अन्तिम चढ़ाई

अन्तिम चढ़ाई

मेहरुन्निसा परवेज़

क्रम

अन्तिम चढ़ाई	7
अयोध्या से वापसी	18
बूंद का हक	32
गुरुमन्त्र	47
अपनी जमीन	54
पत्थरवाली गली	61
जमाना बदल गया है	77

अन्तिम चढ़ाई

प्लेटफार्म पर खड़ी वह पर्स से बार-बार रूपेश की तसवीर निकालकर ध्यान से देखती और मन-ही-मन प्रसन्न हो जाती, फिर झट-से तसवीर पर्स मे रख देती। जवान रूपेश की तसवीर से वह बार-बार आठ साल के नन्हे रूपेश का चेहरा मिलाने की कोशिश करती, पर दोनों चेहरो मे कही कोई समानता नही दिखती। बार-बार वह तसवीर निकालकर अपने मन को तसल्ली दे लेती कि यही रूपेश है, पर मन जैसे मानने को तैयार ही नही होता...बार...बार...आठ साल का नन्हा रूपेश आँखों के सामने आ खडा होता।

रितेश बन्द गले का कोट पहने बुकस्टाल के सामने खड़े थे। वह एक बार मुडकर रितेश को निहार लेती है। इन पन्द्रह वरसों में रितेश ज्यूं-के-त्यूं ही थे, बस कनपटी के पास बचे सारे बाल सफेद हो गये थे और चाँद चिकने मैदान-सी चमकने लगी थी। बाकी उनकी छवि वही थी। रितेश भी रूपेश को लेने आये थे।

सुबह से ही रितेश ने स्टेशन जाने की तैयारियाँ की थी। नयी ब्लेड निकालकर शेव किया था। नये साबुन से नहाये थे। सबसे बढ़िया कपड़े निकालकर पहने थे। बार-बार आदमकद शीशे के सामने खड़े होकर उसकी तरफ देखा था—"क्यों, सज रहा हूँ न ?"

उसने कोई उत्तर नही दिया और गीली आँखों से रितेश को देखा था, मानो कह रही हो—आज अकेला ही रहने दो। सुबह से ही पुरानी स्मृतियाँ

अन्तिम चढ़ाई

प्लेटफार्म पर खड़ी वह पर्स से बार-बार रूपेश की तसवीर निकालकर ध्यान से देखती और मन-ही-मन प्रसन्न हो जाती, फिर झट-से तसवीर पर्स में रख देती। जवान रूपेश की तसवीर से वह बार-बार आठ साल के नन्हे रूपेश का चेहरा मिलाने की कोशिश करती, पर दोनों चेहरों में कहीं कोई समानता नहीं दिखती। बार-बार वह तसवीर निकालकर अपने मन को तसल्ली दे लेती कि यही रूपेश है, पर मन जैसे मानने को तैयार ही नहीं होता···बार ···बार···आठ साल का नन्हा रूपेश आँखों के सामने आ खड़ा होता।

रितेश बन्द गले का कोट पहने बुकस्टाल के सामने खड़े थे। वह एक बार मुड़कर रितेश को निहार लेती है। इन पन्द्रह बरसों में रितेश ज्यूँ-के त्यूँ ही थे, बस कनपटी के पास बचे सारे बाल सफ़ेद हो गये थे और चाँद चिकने मैदान-सी चमकने लगी थी। बाकी उनकी छवि वही थी। रितेश भी रूपेश को लेने आये थे।

सुबह से ही रितेश ने स्टेशन जाने की तैयारियाँ की थीं। नयी ब्लेड निकालकर शेव किया था। नये साबुन से नहाये थे। सबसे बढ़िया कपड़े निकालकर पहने थे। बार-बार आदमकद शीशे के सामने खड़े होकर उसकी तरफ देखा था—"क्यों, सज रहा हूँ न?"

उसने कोई उत्तर नहीं दिया और गीली आँखों से रितेश को देखा था मानो कह रही हो—आज अकेला ही रहने दो। सुबह से ही पुरानी स्मृतियाँ

को याद कर-कर वह कई बार रो चुकी थी। रितेश उसकी मनःस्थिति समझ गये थे, इसलिए सुबह से उसे किसी-न-किसी काम के बहाने अपने निकट चाहते थे और वह चाहती थी आज···बस आज उसे भरपूर एकान्त मिल जाये ताकि वह चुप एक कोने में बैठी पुरानी स्मृतियों को जी ले, उन्हें हल्के हाथों से स्पर्श कर ले, धीमे-धीमे सहला ले और जी भरकर रो ले।

रितेश उसके निकट आये और दोनों हथेलियों में उसका चेहरा भर-कर बोले, "सच कहो भला, रूपेश तुम्हारा अकेले का बेटा है ? क्या अभी भी कुछ ऐसा बचा है, जिस पर केवल तुम्हारा हक है, मेरा नहीं ?"

"न, न, ऐसा मत बोलो," वह रितेश की छाती से लग गयी, "रूपेश हम दोनों का बेटा है !" उसकी गाल पर आँसू लुढ़क आये।

"सच कहूँ माला," रितेश ने उसे गहरे से निहारा और गम्भीर शब्दों में कहा, "रूपेश न तो मेरा बेटा है, न तुम्हारा, वह सिर्फ जितेन का बेटा है। हम दोनों तो बस दोस्त की तरह उसे लिवाने जा रहे हैं। हम दोनों ही बराबर की श्रेणी में आते हैं। और देखो माला," रितेश थोड़ा ठहरकर बोले, "स्टेशन जाने के पहले ही एक बात अच्छे से समझ लो, ज्यादा आशा बांध-कर मत जाना। अपने को हर बात के लिए तैयार करके चलना, अब रूपेश आठ साल का नन्हा बच्चा नहीं, अब वह जवान हो गया है। उम्र के साथ-साथ उसकी समझ के पैमाने भी बदल गये होंगे और···और वह तुम्हारा··· मेरा मतलब है, हम दोनों का अपमान भी कर सकता है। समझदारी इसी में है कि हमें पहले ही इस बात के लिए तैयार रहना चाहिए। याद रखो माला, तुम अपने बेटे को लिवाने नहीं, अपने पिछले अतीत को निहारने जा रही हो, जो महज बिन्दु बनकर शेष रह गया है। इससे आगे की न सोचना, न ही अभिलाषा रखना।"

"नहीं रखूंगी, नहीं रखूंगी," वह जोर से रो पड़ी, "अपमान ही तो होगा न ! अपमान के सिवाय मुझे मिला भी क्या है !"

"चलो, अब समय नहीं रहा, तीन मील का रास्ता है, जल्दी नहाकर आओ, मैं तुम्हारी आलमारी से तुम्हारी साड़ी चुनकर रख देता हूं। आज तुम रितेश की पत्नी नहीं, रूपेश की माँ बनकर जाओगी।"

रितेश की बातों ने उसे गुदगुदाकर जैसे निहाल कर दिया। रूपेश की

माँ ! कितना ममता के रस से भरा शब्द था। हाँ, बस इसी पड़ाव के लिए ही तो उसकी जिन्दगी ठहरी थी। बस इसी दिन का ही तो इन्तजार था। इस दिन के लिए वह कब से बाट जोह रही थी, हमेशा डूबते मन में एक आस बँधी थी कि रूपेश बड़ा होगा तो जरूर-जरूर उसके पास आयेगा। दुनिया ने उसे तरह-तरह से बदनाम किया था, उसके नाम के आगे जितनी सस्ती बातें जोड़ी जा सकती थीं, जोड़ी गयीं। दुख उसे अपने अपमान का नहीं था, दुख तो उसे इस बात का रहा कि जितेन, जो हर बात का साझीदार था, खुद मुकरकर भीड़ में शामिल हो गया था। और वह जीवन के उस पथ पर अकेली रह गयी थी और आज उस लम्बी यात्रा की अन्तिम चढ़ाई थी। अन्तिम चढ़ाई ही तो कठिन होती है, क्योंकि सारा भेद जिसके छलावे के सहारे हम अपने को समेटे रहते हैं, मोह में बँधे रहते हैं, वह टूटनेवाला होता है और फूली हुई साँस पर काबू पाना कठिन-सा हो जाता है।

बाथरूम से वह नहाकर लौटी। गीले बालों को तौलिये से झटककर उसने पीछे पीठ की ओर फेंका कि सहसा उसके हाथों को लकवा मार गया। रितेश ने पलँग पर उसकी वही साड़ी निकालकर रखी थी, जो एक बार उसने रूपेश के पाँचवें जन्मदिन पर पहनी थी। पीले रंग की, काली बनारसी बार्डरवाली साड़ी थी।

उसने पथराई और दुखती आँखों से रितेश को देखा। इस कष्ट की तो उसने कल्पना नहीं की थी।

"माला," रितेश उसकी मन:स्थिति को समझकर धैर्य बँधाने के अन्दाज में बोले, "तुम्हें पता है इन पन्द्रह बरसों में तुम कितना बदल गयी हो ? तुम्हारे बाल सफेद हो गये हैं, क्या रूपेश अपनी माँ को पहचान पायेगा ? हो सकता है उसकी बचपन की नन्ही स्मृति में यह साड़ी कहीं अटकी रह गयी हो, जब तुम गुब्बारों से सजे कमरे में उसका हाथ पकड़कर केक कटवाती थीं।"

वह सहम-सी गयी, जैसे सामने काला नाग देख रही हो। सबकुछ कितना कष्टकारक था। पीड़ा से उसका मुँह तमतमा गया, साँस लेना कठिन-सा हो गया। पुरानी यादों को जहाँ उसने सहेजकर रखा था, वहीं उसने

पुरानी एक-दो चीजों को भी सहेजकर रख छोड़ा था। पता नहीं किस आशा में, यह खुद उसे पता नहीं था, परन्तु आज वही यादें, वही स्मृतियाँ कितनी दर्दनाक हो उठी थीं !

पर आज हर बात के लिए वह तैयार थी। वही बुजदिल मन, जो कभी पुरानी बातों को याद करने से भी घबराता था, आज हर बात का सामना करना चाहता था। उसने इसी तरह घबरा-घबराकर तो अपने-आपको कमजोर बना लिया था।

वह पीले रंग की काली बनारसी बार्डरवाली साड़ी बाँधे, बाहर आयी, जहाँ पहले से ही तैयार हाथ की घड़ी घुमाते रितेश उसका इन्तजार करते टहल रहे थे।

"माला !" उसकी हल्की पदचाप से रितेश ने सर उठाकर उसे प्रसन्नता से देखा, "तुम पन्द्रह वर्ष पहले की माला लग रही हो, सच, रूपेश तुम्हें देखते ही पहचान लेगा।"

"अच्छा," उसने मुसकराकर धड़कते दिल पर काबू किया।

"डार्लिंग, कितनी स्पीड से चलाऊँ ?" रितेश ने उमंग में भरकर कार का दरवाजा उसके लिए खोलते हुए पूछा।

"दस की स्पीड से।" वह हँस दी। पहले बहुत, पहले, रितेश बहुत तेज कार चलाया करते थे। वह हमेशा चिल्लाती थी। बाद में, जब उसने कार में बैठना ही बन्द कर दिया तो हमेशा सतर्क रहते और पूछ लिया करते थे। वह जितना कहती, उतने पर ही गाड़ी चलती। अब कुछ वर्षों से तो वह चालीस से आगे बढ़े ही नहीं, आज जैसे वह भी पन्द्रह वर्ष पीछे चले गये थे।

जितेन से उसके सम्बन्ध दिनों-दिन खराब होते जा रहे थे। दोनों ने एक-दूसरे से बोलना तक छोड़ रखा था। जब लड़ना होता तभी वह एक-दूसरे से बोलते थे या एक-दूसरे की ओर देखते थे। जितेन की आँखों में उसके लिए घृणा, नफरत का भाव दिनों-दिन गहरा होता जा रहा था। दोनों के बीच के रिश्ते कई वर्ष पहले समाप्त हो गये थे, दोनों को जोड़े थी एक कड़ी—रूपेश !

जहाँ दोनों एक-दूसरे से घृणा करते थे, वहीं एक बिन्दु पर आकर कोमल हो जाते थे। दोनों ही समान रूप से रूपेश को प्यार करते थे। एक बार जितेन ने अपने दोस्त से कहा भी था, 'मैं जानता हूँ, माला रूपेश को बहुत ज्यादा चाहती है।'

तब उसे उसका यह विश्वास बुरी तरह खल गया था। जब दोनों के *बीच अलग होने की बात उठी, तब जितेन ने साफ शब्दों में कहा था,* 'रूपेश आठ वर्ष पूरे कर चुका है। तुम्हारा उस पर कोई हक नहीं बनता। यदि तुमने उसे चोरी से ले जाने की कोशिश भी की तो कानून कहीं-न-कहीं से खोजकर उसे मुझ तक पहुँचा जायेगा।'

वह चाहती तो रूपेश को ला सकती थी। जितेन मुकदमा करता और रूपेश उससे छिन जाता। फिर वह यह भी नहीं चाहती थी कि रूपेश उसकी तरह दुनिया की ठोकरें खाये। उसे विश्वास था—जितेन चाहे जितना कटु हो, पर रूपेश को माँ की तरह ही प्यार तथा सुरक्षा देगा। उसे यह भी उम्मीद थी कि जितेन उसके और रूपेश के बीच नहीं आयेगा। वह जब चाहेगी उससे मिल सकेगी। वह रूपेश-जैसे अनमोल रत्न को छोड़कर जा रही थी, फिर अपनी और चीजों को क्या समेटती? उसने सब जहाँ-का-तहाँ छोड़ दिया, बस यही सोचकर कि सब उसके रूपेश के काम आयेगा।

दो-चार गहने और दो-चार कपड़े एक सूटकेस में रखकर वह आयी थी, बाकी सब जितेन की आँखों के सामने था। पर, बाद में, जहाँ-तहाँ उसे सुनने को मिला, जितेन सबसे कहता फिरा था—माला गहने लेकर भाग गयी!

तब उसे अपने भाग्य पर तरस आया था, अपनी गैरत पर शर्म आयी थी। वही जितेन जो कभी उसका पति था, उसने इतना भी नहीं सोचा कि वह सब छोड़ गयी, सिर्फ अपने खुद के दो-चार गहने ही तो ले गयी, सिर्फ इसलिए कि यदि शुरू-शुरू में कहीं नौकरी नहीं मिलेगी, तो कम-से-कम उन्हें बेचकर दो समय की रोटी तो जुटा सकेगी, भीख तो नहीं माँगनी पड़ेगी! तब उसे अपने-आप पर शर्म आयी थी। कितना अच्छा होता, वह भीख ही माँग लेती। जहाँ सब छोड़ दिया, वहाँ···

चिड़िया की किस्मत में सारी उम्र घोंसला बनाना ही लिखा होता है।

इससे अधिक वह कर भी क्या सकती है ! तूफान आता है और उसके आवाद घोंसले को तहस-नहस कर जाता है। वह हताश होती है। दुखी होकर अपने वरवाद, उजड़े घोंसले को निहारती है। सारी-सारी रात विजली और तूफान के भय से भयभीत किसी की छत के नीचे बैठी रात गुजार देती है। सोचती है—अव सारी उम्र घोंसला नहीं वनाऊँगी, हर वार तूफान आकर उसे नष्ट कर देता है। पर जव सुवह होती है, आसमान साफ होता है तो वह फिर किसी पेड़ का आसरा लेती है और लगन, मेहनत से जुट जाती है, तिनके चुनने।

वस, इसी तरह मानव-मन है। हर तूफान के वाद सोचता है—जिन्दगी फिर नहीं वसायेगा। पर हालात मजवूर कर देते हैं और वह फिर अपनी नयी दुनिया आवाद कर लेता है। पर उसकी यातना, मानसिक द्वन्द्व को कोई नहीं जान पाता। चिड़िया की किस्मत और इन्सान की किस्मत में शायद ज्यादा फरक नहीं है। दोनों का मुकद्दर एक ही है, यानी किसी-न-किसी घोंसले में पनाह लेना।

विना किसी सहारे के संसार में रहने का विचार करके उसका कलेजा काँप जाता था। वह अकेली, असहाय नारी जीने का साहस कैसे करती ? जहाँ कुशल खिलाड़ी मुँहकी खा चुके हों, वहाँ उस अकेली नारी की क्या गति होती ? कौन रक्षा करेगा ? कौन मरने के वाद कन्धा देगा ? ये सारे प्रश्न थे, जिन्होंने उसे भयभीत किया।

जीवन की डोर हमेशा उसके हाथ से छितर जाती और वह आँखों में आँसू लिये, छितरी डोर को फिर-फिर लपेटने की कोशिश करती। मन जिद्दी वच्चे-सा ऐंठकर वैठ जाता और पीछे दौड़ना चाहता और वह उसकी उँगली पकड़े आगे की राह दिखा देती। पर शायद कोई सोच भी नहीं सकता इन सारी क्रियाओं में वह कितना थक जाती, कितना टूट जाती थी !

रितेश के साथ व्याह करने के वाद कई साल वीत गये पर उसके यहाँ कोई वाल-वच्चा नहीं हुआ। यह दुख भी जव-तव उसकी आँखों में आकर ठहर जाता। कम-से-कम दूसरे वच्चे से तो वह अपने खाली मन को भर सकती थी।

जितेन रूपेश को लेकर उसकी कमजोरी को जानता था। उसने उसके

माध्यम ने अपनी सारी दुश्मनी निकाली। कभी उसे रूपेश से मिलने नहीं दिया और नन्हे रूपेश के नन्हे-से दिमाग में उसके खिलाफ तरह-तरह की बातें भरीं, उसे बदचलन घोषित किया। यह दुख सजा के रूप में उसके लिए, एक औरत के लिए, बहुत बड़ा था।

रितेश ने काफी प्रयत्न किये, पर जितेन ने उसे रूपेश से मिलने नहीं दिया। एक बार जब वह काफी दुखी थी, तो रितेश उसे लेकर रूपेश के हॉस्टल गये। पर उसी दिन रूपेश अपने घर चला गया था अचानक। वह रूपेश के साथ पढ़नेवाले उसके साथियों से मिली और रूपेश के बारे में पूछती रही, जानकारी लेती रही। उन बच्चों ने उन दोनों को अपने मैस में डिनर पर इन्वाइट किया। वे लोग साफ-सुथरे, सलीके से सजे-सँवरे हाल में बच्चों के साथ बैठकर डिनर लेते रहे।

रितेश बच्चों में घुलमिल गये थे। वह बच्चों को देख सोचती रही—ऐसे ही रूपेश भी डिनर के सूट में, सलीके से हाल में आता होगा!

जाते समय उन लोगों ने सब बच्चों को मिठाई और टाफी बाँटी थी। लौटते समय उसका मन बहुत भारी था। हॉस्टल की सीढ़ियाँ उतरते उसके पैर बेजान लाश की तरह हो गये थे। उसने मन-ही-मन सोच लिया था—अब रूपेश से उसकी भेंट उसके भाग्य में नहीं है।

सारे रास्ते उसकी आँखों के आगे वही आठ साल का रूपेश दौड़ता आ खड़ा होता, क्रिकेट का बैट लिये—ममी, ज़रा वालिंग करो तो!

और उसके लिए अपने को सँभालना कठिन हो जाता। आँखों में मौत की-सी वीरानी ठहर जाती थी। इसी वीरानी को ढोते हुए उसने साल-दर-साल काट दिये।

रितेश रिटायर हुए तो उन लोगों ने अपने फार्म पर बँगला बना लिया—छोटा-सा काटेजनुमा बँगला। नौकरों के साथ दोनों अपने बगीचे को सजाते-सँवारते रहते। एक-एक फूल की खबर रितेश को थी। उनका कोई मेहमान रात को भी घर आता तो वे टार्च से एक-एक फूल को दिखाते और प्रसन्न होते। वह खुद धीरे-धीरे अपना अतीत भूल गयी थी, अपनी पहचान भूल गयी थी।

इतने वर्षों के बाद अचानक रूपेश की एक चिट्ठी मिली थी, साथ में उसका युवा रूप में एक फोटो था। चिट्ठी केवल दो लाइन की थी—मैं आपके शहर में अपनी टीम के साथ खेलने आ रहा हूँ। आपसे मिलना चाहता हूँ। क्या आप स्टेशन पर आ सकेंगी ?

पत्र पाकर वह खुशी से पागल हो गयी थी। रितेश भी जैसे बौरा गये थे। वह सारा दिन धूप में तपते हुए बगीचे को चुस्त-दुरुस्त करते रहे, माली को ताकीद देते रहे, "देखो, नीम की सूखी पत्तियाँ लॉन पर नहीं पड़ी रहनी चाहिए। चिड़ियाँ गमलों में तिनके बिखेर जाती हैं, ध्यान रखना।"

सारा घर वह खुद अपने सामने ठीक करवाते रहे। रसोइये को कई-कई बार हिदायतें दी गयी थीं कि पुडिंग और आइसक्रीम बढ़िया बननी चाहिए। वह खुद भूल गयी थी कि पुडिंग और आइसक्रीम रूपेश की बचपन की पसन्द थी। अब, इतने वर्षों के बाद तो अन्तर आ गया होगा। पर जैसे वह अपने आप में भूली हुई थी। बस, इसी दिन के इन्तजार में तो वह अब तक जी रही थी।

रूपेश को गुलाबी रंग बहुत पसन्द था। उसने रूपेश की खुशी के लिए कमरे की हर चीज को गुलाबी कर दिया था। परदे, बैडशीट, कुशन-कवर सब गुलाबी।

रितेश जब नौकरी में थे, तब आये-दिन हल्ला मचा रहता था—आज कलेक्टर का दौरा, तो कल कमिश्नर का। इस तरह भाग-दौड़ मची रहती थी। वह थक जाती थी। पर जब मेहमानों के जाने के बाद रितेश उसे बधाई देते, 'भई माला, तुमने तो गजब का इन्तजाम किया, सारे मेहमान खुश हो गये।' सुनकर उसकी सारी थकान उतर जाती थी।

पर जब से रितेश रिटायर हुए, आराम-ही-आराम था। रितेश को नयी-नयी क्राकरी खरीदने का बहुत शौक था। सीजन के अनुसार डिनर-सैट के रंग निकाले जाते थे, पर अब तो सारे डिनर-सैट शीशों की आलमारी में रखे रहते थे, मानो किसी दुकान में सजे हों। अब वह भागमभाग भी नहीं रहती थी। दोनों डायनिंग-हाल में खाना खाने के बजाय, अपने कमरे में ही खा लेते थे।

और आज, रूपेश का पत्र मिलते ही जैसे किसी ने जादू की छड़ी घुमा

दी हो। सारी हलचल फिर शुरू हो गयी थी। रितेश बार-बार नौकरों को हिदायत देते, "सुबह की चाय इस सैट में, शाम की इस सैट में, लंच इस सैट में, डिनर इस सैट में।"

नौकर भी समझ गये थे कि कोई खास मेहमान आनेवाले हैं। रितेश ने अपने कमरे में रखी तमाम अंग्रेजी पुस्तकें रूपेश के कमरे में सजा दी थीं। रूपेश के लिए खासतौर पर वह कमरा चुना गया था, जिसकी खिड़कियाँ गुलाबों के बगीचे की ओर खुलती थीं।

रूपेश क्रिकेट का माना हुआ खिलाड़ी था। वह कई बार बाहर देशों में भी जाकर अपने देश का प्रतिनिधित्व कर आया था। वह सबसे ज्यादा लोकप्रिय खिलाड़ी माना जाने लगा था। बचपन से ही उसकी तेज आँखें गेंद को पहचानने के लिए हमेशा सजग रहती थीं। बल्ला पकड़ने और फील्डिंग करते समय झुककर खड़े होने का उसका अपना खास अन्दाज था, जिसे वह पहचानती थी।

ट्रेन से उतरी बेसब्र भीड़। शोर अब धीरे-धीरे थमने लगा था। सब जैसे अपनी मंजिल तक पहुँचने के लिए, अपने प्रियजनों से मिलने के लिए, व्याकुल हों।

धीरे-धीरे भीड़ बाहर की ओर सरकने लगी थी। खोमचेवाले, जो बेहद बेसब्री आवाज में चिल्ला रहे थे, अब चुप हो गये थे। वैसे भी इस ट्रेन पर उनका सामान बिकनेवाला नहीं था, क्योंकि यह ट्रेन का अन्तिम स्टेशन था। यहाँ आकर ट्रेन पूरी खाली हो जाती थी।

भीड़ में खड़ी-खड़ी वह पहले जैसे खुद भीड़ बन गयी थी। पर अब दूर से ही उसे देखा जा सकता था। हल्के बादामी रंग की उसकी साड़ी और चॉकी रंग के बार्डर के फूल। उसके गोरे पैरों में फँसी काली चप्पल भी दूर से दिख रही थी। इधर-उधर उड़ते छोटे-छोटे बाल चोटी से स्वतन्त्र होकर उड़ रहे थे और उसके परेशान चेहरे को अधिक स्पष्ट कर रहे थे। उसने बेचैनी से अपने शरीर का भार दायें पैर से बायें पैर पर डाला और सतर्क खड़ी हो गयी।

इतने वर्षों के बाद अचानक रूपेश की एक चिट्ठी मिली थी, साथ में उसका युवा रूप में एक फोटो था। चिट्ठी केवल दो लाइन की थी—मैं आपके शहर में अपनी टीम के साथ खेलने आ रहा हूँ। आपसे मिलना चाहता हूँ। क्या आप स्टेशन पर आ सकेंगी ?

पत्र पाकर वह खुशी से पागल हो गयी थी। रितेश भी जैसे बौरा गये थे। वह सारा दिन धूप में तपते हुए बगीचे को चुस्त-दुरुस्त करते रहे, माली को ताकीद देते रहे, "देखो, नीम की सूखी पत्तियाँ लॉन पर नहीं पड़ी रहनी चाहिए। चिड़ियाँ गमलों में तिनके बिखेर जाती हैं, ध्यान रखना।"

सारा घर वह खुद अपने सामने ठीक करवाते रहे। रसोइये को कई-कई बार हिदायतें दी गयी थीं कि पुडिंग और आइसक्रीम बढ़िया बननी चाहिए। वह खुद भूल गयी थी कि पुडिंग और आइसक्रीम रूपेश की बचपन की पसन्द थी। अब, इतने वर्षों के बाद तो अन्तर आ गया होगा। पर जैसे वह अपने आप में भूली हुई थी। बस, इसी दिन के इन्तजार में तो वह अब तक जी रही थी।

रूपेश को गुलाबी रंग बहुत पसन्द था। उसने रूपेश की खुशी के लिए कमरे की हर चीज को गुलाबी कर दिया था। परदे, बैडशीट, कुशन-कवर सब गुलाबी।

रितेश जब नौकरी में थे, तब आये-दिन हल्ला मचा रहता था—आज कलेक्टर का दौरा, तो कल कमिश्नर का। इस तरह भाग-दौड़ मची रहती थी। वह थक जाती थी। पर जब मेहमानों के जाने के बाद रितेश उसे बधाई देते, 'भई माला, तुमने तो गजब का इन्तजाम किया, सारे मेहमान खुश हो गये।' सुनकर उसकी सारी थकान उतर जाती थी।

पर जब से रितेश रिटायर हुए, आराम-ही-आराम था। रितेश को नयी-नयी क्राकरी खरीदने का बहुत शौक था। सीजन के अनुसार डिनर-सैट के रंग निकाले जाते थे, पर अब तो सारे डिनर-सैट शीशों की आलमारी में रखे रहते थे, मानो किसी दुकान में सजे हों। अब वह भागमभाग भी नहीं रहती थी। दोनों डायनिंग-हाल में खाना खाने के बजाय, अपने कमरे में ही खा लेते थे।

और आज, रूपेश का पत्र मिलते ही जैसे किसी ने जादू की छड़ी घुमा

दी हो। सारी हलचल फिर शुरू हो गयी थी। रितेश बार-बार नौकरों को हिदायत देते, "सुबह की चाय इस सेट मे, शाम की इस सेट में, लंच इस सेट मे, डिनर इस सेट में।"

नौकर भी समझ गये थे कि कोई खास मेहमान आनेवाले हैं। रितेश ने अपने कमरे मे रखी तमाम अंग्रेजी पुस्तकें रूपेश के कमरे मे सजा दी थीं। रूपेश के लिए खासतौर पर वह कमरा चुना गया था, जिसकी खिडकियाँ गुलाबों के बगीचे की ओर खुलती थी।

रूपेश क्रिकेट का माना हुआ खिलाडी था। वह कई बार बाहर देशों मे भी जाकर अपने देश का प्रतिनिधित्व कर आया था। वह सबसे ज्यादा लोकप्रिय खिलाडी माना जाने लगा था। बचपन से ही उसकी तेज आँखें गेंद को पहचानने के लिए हमेशा सजग रहती थी। बल्ला पकड़ने और फील्डिंग करते समय झुककर खड़े होने का उसका अपना खास अन्दाज था, जिसे वह पहचानती थी।

ट्रेन से उतरी बेसब्र भीड। शोर अब धीरे-धीरे थमने लगा था। सब जैसे अपनी मंजिल तक पहुँचने के लिए, अपने प्रियजनो से मिलने के लिए, व्याकुल हों।

धीरे-धीरे भीड़ बाहर की ओर सरकने लगी थी। खोमचेवाले, जो बेहद बेसब्री आवाज मे चिल्ला रहे थे, अब चुप हो गये थे। वैसे भी इस ट्रेन पर उनका सामान बिकनेवाला नही था, क्योंकि यह ट्रेन का अन्तिम स्टेशन था। यहाँ आकर ट्रेन पूरी खाली हो जाती थी।

भीड़ मे खड़ी-खड़ी वह पहले जैसे खुद भीड़ बन गयी थी। पर अब दूर से ही उसे देखा जा सकता था। हल्के बादामी रंग की उसकी साडी और कॉफी रंग के बार्डर के फूल। उसके गोरे पैरों मे फँसी काली चप्पल भी दूर से दिख रही थी। इधर-उधर उड़ते छोटे-छोटे बाल चोरी से स्वतन्त्र होकर उड रहे थे और उसके परेशान चेहरे को अधिक स्पष्ट कर रहे थे। उसने बेचैनी से अपने शरीर का भार दायें पैर से बायें पैर पर डाला और सतर्क खड़ी हो गयी।

तभी उसने देखा—कुछ लड़के एक-सी ड्रेस पहने, पीठ पर अपना सफरी बैग लिये, नीचे उतरे।

आराम और बेफिक्री से उतरता, सीटी बजाता, वह दल उसके निकट आकर ठहर गया। चमड़े की दीवारों में बरसों से उम्र-कैद की सजा काटता दिल बाहर आने को उछला···

"एक्सक्यूज मी, आप ही माला भारद्वाज हैं?"

"हाँ बेटा, मैं ही माला भारद्वाज हूँ," रूपेश के बोलने के ढंग से उसे धक्का-सा लगा, पर तभी ममता के उफान ने इस अपमान को ढँक लिया, "तुम···तुम रूपेश हो न?" उसके ममता से भरे हाथ रूपेश को गले लगाने को उतावले से उसकी ओर बढ़ गये।

"जी, मैं रूपेश हूँ," पहाड़ की तरह ठोस और जवान शरीर उसके पैर छूने नीचे झुक गया। जवान बेटे की माँ होने का अभिमान उसके चेहरे पर बरसात की सहसा खिली धूप की तरह फैल गया। ममता से तरसी आँखें आशीष देने, बाँध तोड़कर बहने, पर उतावली हो उठीं।

"आप रितेश भारद्वाज हैं?" रूपेश, रितेश की ओर बढ़कर हाथ मिलाते हुए बोला।

"तुम सही हो, माय यंग बॉय," रितेश ने आगे बढ़कर उसे सीने से लगा लिया। रितेश बड़ी प्रसन्नता से रूपेश के मित्रों से हाथ मिला रहे थे।

रूपेश और उसके साथियों को रिसीव करने वहाँ कई लोग आये थे। स्टेशन पर ही काफी स्वागत किया गया। कॉलेज की बहुत-सी लड़कियाँ भी अपने चहेते खिलाड़ियों से मिलने फूलों के गुलदस्ते लेकर आयी थीं। चारों तरफ से उत्तेजक भीड़ ने रूपेश और उसके साथियों को घेर लिया था।

इस स्वागत की भीड़ में दोनों पीछे छूटे जा रहे थे। स्टेशन के बाहर उनकी कार के पास एक मिनी बस खड़ी थी, जिसमें रूपेश और उसके साथियों का सामान रखा गया।

सब लोग मिनी बस में बैठने लगे, तब रूपेश तेजी से उनकी ओर बढ़ता आया, "आप लोग कल मैच देखने आयेंगे न! मैं पास भेज दूँगा।" कहता हुआ रूपेश तेजी से अपने साथियों के बीच गुम हो गया।

मिनी बस धूल उड़ाती चली गयी, तो उसे होश आया। स्टेशन पर अभी

भी हार और गुलदस्तों के झड़े हुए फूल बिखरे पड़े थे।

वह उदास, ठगी-सी खड़ी थी कि रितेश ने उसे कार में बैठने को कहा। वह चौंकी।

कार सूनी, सपाट सड़क पर दौड़ रही थी, वह खिड़की पर हाथ रखे पीछे भागते दृश्य को निहार रही थी।

"तुम पूछोगे नहीं, कार कितनी स्पीड से चलानी है ?" उसने मुड़कर रितेश को डबडबाई आँखों से देखा और मुसकरा दी।

योध्या से वापसी

ान के लिए हाथ में कपड़े लिये बाथरूम की ओर वह जा रही थी कि चानक ऊपर की सीढ़ियों पर ठिठक गयी। सामने भीड़ लगी थी। हॉस्टल ी कुछ लड़कियाँ एक घोंसले को बाहर फेंकने में लगी थीं। घोंसला काफी ड़ा-सा था, जिसमें नन्हे-नन्हे कई अण्डे रखे थे, जो घोंसले के नीचे गिर जाने के कारण फूट गये थे।

लड़कियों के लिए अच्छा-खासा मनोरंजन हो गया था। एक परेशान चिड़िया बड़ी ही बेचैनी से दीवार पर भटकती उड़ रही थी। कभी एक दरवाजे पर बैठ जाती, कभी वह खिड़की पर बैठ जाती, कभी यूँ ही दीवारों के चक्कर लगाती, फिर बैठकर गिरे हुए घोंसले, फूटे हुए अण्डों को निहारने लगती।

घोंसला शायद तसवीर के पीछे था जो थोड़ी-सी असावधानी के कारण नीचे गिर गया था।

सीढ़ियों के हत्थे को पकड़े उसका मन इन्हीं फूटे अण्डों की तरह तड़क गया था। हॉस्टल का नौकर आया, वह घोंसले को बेदर्दी से उठाकर बाहर कचरे में फेंक आया। लड़कियाँ हँसती-खिलखिलाती अपने-अपने कमरे में चली गयीं। चिड़िया अब भी व्याकुलता से तड़पकर अपने घोंसले के लिए, अण्डों के लिए विलाप कर चीख रही थी।

वह पोर्च में आ गयी। शाम की ठण्डी बयार बह रही थी। दिल्ली की

इस भीड़ के सैलाब में, चमक-दमक में उसे बस शाम की यह ठण्डी बयार ही भली लगती थी। इस अजनबियों के शहर में, अजनबी लोगों की भीड़ मे, जब से वह आयी थी, उसने अपनी पहचान भी खो दी थी। वह कौन है? कहाँ से आयी है? सारे प्रश्न धुँधले हो गये थे, पर अचानक इस बेघर हुई चिड़िया ने अपने पंजो से उसके जख्मो को और'''और कुरेद दिया था!

मोहल्ले के सूनेपन में रिक्शे के घुँघरुओ के बोल दूर-दूर तक गूँज रहे थे। लम्बे अरसे के बाद उसी पहचाने मोहल्ले मे अपने को पा उसे विचित्र लग रहा था। उसने मन-ही-मन सोचा—अच्छा हुआ रात का अँधेरा था, वरना अभी सारा मोहल्ला इकट्ठा हो जाता। सोचते ही घबराहट मे उसके माथे पर पसीना झलक आया। उसने दो-तीन मरतबा मुड़-मुड़कर जाने-पहचाने पड़ोसियों के दरवाजो को देखा। इस आशका से कि कही वे खुले न हो!

बाबूजी ने आगे बढकर घण्टी बजायी। जानी-पहचानी घण्टी की आवाज कमरे में टनटना उठी। किसी के उठने, फिर चप्पल घसीटकर इधर आने की आहट मिली। झटके से दरवाजा खुला और सामने राजेन्द्र खड़े थे।

राजेन्द्र अचकचाकर एक तरफ हो गये। वह अपनी अटैची उठाकर तेजी से अन्दर हो गयी। उसने एक बार भी आँख उठाकर राजेन्द्र को नही देखा।

उसने कमरे में अटैची रख दी और घूम-घूमकर सारे घर को देखने लगी। सारा घर बेतरतीब-सा बिखरा, धूल में सना पड़ा था। दीवार पर अपनी तसवीर उलटी टँगी देख उसका मन दुखी हो गया। अपनी उलटी तसवीर देख उसे धक्का-सा लगा। तो राजेन्द्र ने उसे मरा हुआ समझ लिया था! उसने झट स्टूल पर चढकर तसवीर सीधी की और अपने आँचल से धूल साफ कर दी।

बाहर बरामदे में राजेन्द्र बहुत ही सन्तुलित शब्दों में बाबूजी से बात कर रहा था। पुरानी बातों की जरा भी कड़वाहट नही थी शब्दो मे।

माँ ने टिफिन में खाने का काफी सामान रख दिया था। रास्ते में भूख

ही नहीं लगी थी, इसलिए सारा खाना वैसा ही रखा था। उसे तुरन्त कुछ नहीं बनाना पड़ा, उसने उसी खाने को गरम कर टेबल पर लगा दिया और बाबूजी को खबर दे दी। बाबूजी मुंह-हाथ धोकर राजेन्द्र के साथ खाने बैठ गये।

"तुम भी खा लो, नीरा।" बाबूजी ने दो-तीन बार कहा, पर उसने बात को टाल दिया।

बाबूजी और राजेन्द्र खाकर उठ गये तो उसने टिफिन बन्द कर रख दिया। उसे भूख थी नहीं।

रात काफी हो गयी थी। बाबूजी ड्राइंगरूमवाले तख्त पर ही लेट गये। वह अपने कमरे में चली गयी। राजेन्द्र ऊपर अपने कमरे में चले गये।

सुबह उठकर उसने बाहर का दरवाजा खोला और खिड़कियों के परदे खींच दिये। ढेर सारा उजाला कमरे में बिखर गया।

"नीरा!" वह पलटी ही थी कि बाबूजी ने आवाज दी। शायद बाबूजी काफी पहले से जाग गये थे।

"जी," वह उनके पास जाकर बैठ गयी।

"बेटा, रात तुम लोगों में कोई बात नहीं हुई?" बाबूजी ने उसके चेहरे को निहारते हुए पूछा।

उसका चेहरा शर्म से लाल हो गया। उसने कोई उत्तर नहीं दिया और सर झुकाये पैर के नाखूनों को देखती रही।

"आदमी क्या पढ़-लिखकर अपने-अपने दायरे में इतना बंध जाता है कि दायरे को तोड़ नहीं पाता? हम ही लोग ठीक हैं, कैसा भी वातावरण हो, पत्नी से बोल लेते हैं।"

बाबूजी की बातों से उसे बड़ी परेशानी-सी हुई। तभी परदा हटाकर राजेन्द्र आ गये। बाबूजी और वह दोनों सकपका-से गये, कहीं राजेन्द्र ने बातें सुन तो नहीं लीं? राजेन्द्र ने भी दोनों को शक से देखा, जैसे कह रहे हों, 'जानता हूँ, बाप-बेटी में क्या बातें हो रही थीं।'

राजेन्द्र सोफे पर बैठ गये, वह उठकर पीछे बरामदे में आ गयी।

किचन में पारो आ गयी थी और अपना काम कर रही थी। पारो ने मुस्करा-कर उसे नमस्ते की। उत्तर में वह हँस दी। पारो ने उसे ऊपर से नीचे तक देखा और बोली, "अब मत जाना आप, बिना औरत के घर श्मशान लगता है।"

उसने उत्तर नहीं दिया। बस, मुस्कराकर रह गयी। आँगन में लगा केले का पेड़, जो उसने लगाया था, अब काफी बड़ा हो गया था। उसे देख उसने अन्दाजा लगाया वाकई वह काफी दिन बाहर रही।

"चाय मैं बनाऊँ या आप बनायेंगी?" पारो उसके निकट आती बोली, क्योंकि उसे पता था उसे किसी के हाथ की चाय पसन्द नहीं थी।

"क्यों, इतने दिन तू बनाती नहीं थी, मुझे देखते ही जी चुरा रही है। मुझे भी तो बनाकर पिला। देखूँ, कैसी बनाती थी।"

"नहीं, आप ही बनाइये, मेरे हाथ की चाय आप पसन्द नहीं करेंगी।" पारो झेंपती हुई बोली।

"अच्छा," कहती वह किचन में गयी। किचन में जाते ही उसे विचित्र-सा लगा। चाय-नाश्ता बनाकर उसने ट्रे में लगा दिया और पारो को पकड़ा दिया।

"आपकी चाय?" ट्रे उठाकर भीतर जाते पारो आश्चर्य से बोली।

"यहीं ले लूंगी, तू ले जा।"

पारो के भीतर जाते ही बाबूजी की आवाज आयी, "नीरा, चाय लो आकर।"

"बाबूजी, अभी ब्रश नहीं किया है।" वह झूठ बोल गयी।

वह अपनी चाय लेकर बैठी ही थी कि ऊपरवालों की खिड़की खुली और भाभीजी ने नीचे झांका।

"नीरा आ गयी।"

"नमस्ते भाभीजी, आप अच्छी हैं न?" उसने अपने चेहरे की घबराहट को छुपाते हुए पूछा।

"हम तो ठीक ही हैं, अपनी कहो, अब मत जाना, हमसे झूठ कहकर गयी कि दो दिन में लौट आऊँगी और इतने दिन लगा दिये। मुझे तो रात को ही आवाज मिल गयी थी। इच्छा तो रात ही हो रही थी तुमसे बात

करने की, पर तुम्हारे भाई साहब ने मना कर दिया। बोले, 'सुबह मिल लेना।'"

उसने कोई उत्तर नहीं दिया, बस मुस्कराकर रह गयी।

"साड़ी तो बढ़िया पहन रखी है, माँ ने दी होगी।" भाभीजी ने आँख घुमाकर ऊपर से नीचे तक उसका मुआयना किया।

घबराहट से उसे पसीना आने लगा, तभी बाबूजी ने उसे आवाज दी और उसने चैन की साँस खींची और भीतर चली गयी।

"तुमने चाय ली?" बाबूजी ने पूछा।

"अभी ले लूँगी।"

"अभी कब?" बाबूजी ने पारो को आवाज देकर उसकी चाय वहीं मँगवा ली। वह चाय पीते सामने दीवार को देखती रही।

बाहर कोई आया था शायद। राजेन्द्र उठकर बाहर चले गये।

"सोचता हूँ शाम की गाड़ी से चला जाऊँ।" बाबूजी ने पैर के एक्जीमे के घाव पर मलहम लगाते हुए कहा।

बाबूजी की बात से उसका चेहरा सफेद पड़ गया। उसकी समझ में कुछ नहीं आया कि क्या बोले।

"इतनी जल्दी?"

"हाँ, उधर भी तो देखना है न, तुम्हें पहुँचा दिया, मेरी ड्यूटी खत्म।"

"नहीं, अभी आप रहिए आठ-दस दिन। आपने तो कहा था कि आप रहेंगे थोड़े दिन मेरे साथ, फिर यहाँ आकर इतनी जल्दी जाने का प्रस्ताव।"

"अब जाऊँगा बेटा, तुम दोनों समझदार हो, पढ़े-लिखे हो, अपने हालात खुद ठीक करो। मैंने राजेन्द्र को समझा दिया है, वह पुरानी बातों की चर्चा नहीं करेगा···और तुम्हें भी पति जो कहे, मान लेना चाहिए। औरत पति के घर ही अच्छी लगती है। अपने स्वाभिमान को लेकर कब तक जिन्दा रहोगी? स्वाभिमान को कुचल दो, यह डंक जब तक रहेगा, तुम्हें डसता रहेगा। पत्नी का दरजा छोटा होता है। पति का बड़ा।" बाबूजी बोले जा रहे थे और वह आश्चर्य में भरी उनके चेहरे को देख रही थी। बाबूजी का

बात करने का ढंग कितना बदल गया है? क्या यह वही बाबूजी हैं, जो सबके सामने जोर से बोले थे, 'वह मेरी लड़की है, वह पति के पैर की जूती बनकर नहीं रह सकती। नीरा को रखना है तो राजेन्द्र को उसे बराबरी का दरजा देना होगा।' और आज अचानक बाबूजी का बदला हुआ लहजा सुनकर वह दंग थी। तो बाबूजी ने भी हालात के आगे घुटने टेक दिये? लड़की का बोझ उन्हें भी महसूस होने लगा?

वह चुप रही और चाय पीती रही। रोष से उसका मन भर गया था, पर वह कुछ नहीं बोली।

"तो मैं शाम को चला जाऊँ?" बाबूजी ने आहिस्ता-से फिर पूछा।

"हाँ, चले जाइये।" उसने एकदम सपाट शब्दों में कहा और खाली मग को वापस ट्रे में रख दिया। वह समझ गयी थी—बाबूजी का सहारा वह कब तक लेती रहेगी?

"नहीं, तू कहेगी तो रुक जाऊँगा।" बाबूजी उसके बोलने के ढंग पर चौंक गये और सकपकाये-से उसे निहारते रहे, फिर थोड़ा नरम पड़कर प्यार से बोले, "तो रुक जाऊँ?"

"रुककर क्या करेंगे। नहीं, अब मैं खुद देख लूँगी, आप जाइये, आखिर उधर भी तो देखना है न।" उसने रोष में भरकर बाबूजी के शब्दों को ही दोहरा दिया।

"ठीक है, जैसा तू कहे।" बाबूजी सहमे-से ऐसे बोले जैसे खुद अपने जाल में फँस गये हों।

शाम की गाड़ी से बाबूजी लौट रहे थे। रिक्शे पर सामान रखा गया। सब पड़ोस के लोग इकट्ठे हो गये उत्सुकता से। वह भी बस-स्टैण्ड तक जाने को तैयार हो गयी थी।

"आप भी जा रही हैं?" जब वह बाबूजी के साथ रिक्शे पर बैठी, तो पड़ोस की भाभीजी बोलीं।

"नहीं, बस-स्टैण्ड तक छोड़ने जा रही हूँ।" उसने खीजे शब्दों में कहा।

वह जब से यहाँ आयी थी, सब उसे विचित्र ढंग से देखते थे, जैसे

किसी होनेवाली घटना की वाट जोह रहे हों। सवको शायद इन्तजार था कि उसके आते ही घर में झगड़ा होगा, चटपटे दृश्य देखने को मिलेंगे। इसके विपरीत वातावरण देखकर सव क्षण-क्षण प्रतीक्षा में थे कि अव कुछ होगा, अव कुछ होगा ! पर सपाट चेहरे देखकर सव आश्चर्य में थे।

वस छूटने में समय था। वावूजी उन दोनों के सामने खड़े थे। वह दूर होटल में जलते चूल्हे को देख रही थी।

"देखो, दोनों पुरानी वातों को भूलकर फिर से नया जीवन शुरू करो।" वावूजी ने उपदेश देने के लहजे में कहा।

"मैं तो अपनी जगह सही हूँ, नीरा को ही समझा दीजिए। पति के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, यह उसे आना चाहिए न।" राजेन्द्र ने कहा तो नीरा ने चमककर राजेन्द्र को देखा।

वह तो आयी ही थी सारी स्थितियों से समझौता करने, पर इस तरह वोल-वोलकर तो उसे उकसाया जा रहा था। लड़ने के लिए तैयार किया जा रहा था। राजेन्द्र की आँखों में अभी भी उसके लिए परायापन था, यह उसकी आँखों और शब्दों से स्पष्ट था।

वावूजी के वस में वैठते ही वस छूट गयी। वस के पीछे उड़ती धूल को क्षणभर को ताकती वह अकेली रह गयी।

दोनों रिक्शा-स्टैण्ड की ओर वढ़े। दोनों ने अलग-अलग रिक्शा किया और घर लौट आये। घर पर जव भाभीजी ने झाँककर दोनों को रिक्शे के पैसे देते देखा, तव उसे अपनी गलती का अहसास हुआ। दोनों अलग रिक्शे पर आये, अव इस पर टीका-टिप्पणी होगी।

उसने महसूस किया, जीवन अव पहले से अधिक यातनापूर्ण हो गया था। पहले तो वह लोग लड़कर, एक-दूसरे पर व्यंग्य कर ही मन का रोप निकाल लेते थे, पर अव वह दोनों एक-दूसरे को कुछ नहीं कहते थे। इस तरह वातावरण ज्यादा गम्भीर लगने लगा था। परायापन अधिक नंगा होकर दिखने लगा था।

क्या कभी-कभी ऐसा नहीं होता···हम सोचते हैं, हम जो जगह छोड़

आये हैं, वह सुरक्षित होगी। लौटने पर फिर हमें अपना सुरक्षित स्थान मिल जायेगा। इसी भ्रम में आदमी जानबूझकर मौत के अँधेरे की ओर खिंचता चला जाता है। झूठ की छाया को थामे बैठने को जी चाहता है, खोयी हुई मान-मर्यादा क्या फिर मिल सकती है ?

वह अपनी आलमारी में सूटकेस से कपड़े निकाल रही थी। उसके पुराने कपड़े मुड़े-तुड़े से आलमारी में पड़े थे। उसने देखा—आलमारी में उसकी नीले रंग की साड़ी गायब है। उसने महसूस कर लिया, साड़ी पारो ने गायब की होगी। बस, यही सोचकर कि अब तो वह लौटेगी नहीं। वह आलमारी में कपड़े तह कर रख रही थी, इस बीच राजेन्द्र दो बार कमरे में झाँक गये। उसे घरेलू काम में व्यस्त देख काफी आश्वस्त से बाहर चले गये।

धीरे-धीरे उसने घर का कोना-कोना देखना, झटकना-पोंछना शुरू कर दिया। वह पहले की तरह ही अपने काम में व्यस्त हो गयी थी। मनीप्लाण्ट की बेल, जो पूरी तरह सूखने चली थी, उसे भी उसने ठीक किया। पके-सड़े पत्तों को बाहर फेंका और बेल को काटकर नये सिरे से रोप दिया बोतल में।

बाथरूम से वह नहाकर लौटी और गीले बालों को तौलिये से झटकती बाहर आयी तो देखा—पारो ऊपरवालों के यहाँ से तेजी से उतर रही थी, यकायक उसे देख वह हड़बड़ाकर चौंक गयी।

"क्या बात है ? ऊपर क्यों गयी थी ?"

"ऊपरवाली माताजी ने बुलाया था।" वह सहमी-सी बोली।

"क्यों ?" उसने आश्चर्य से पूछा।

"जी, वह पूछ रही थी कि तेरी बाई साहब से बोलती हैं या नहीं और साहब बाई से बोलते हैं या नहीं।"

"अच्छा।" उसका चेहरा सफेद पड़ने लगा। गले में कुछ फँसता-सा लगा। ऐसा भी प्रश्न लोग कर सकते हैं, यह उसके लिए आश्चर्य की बात थी। फिर भी उसने अपने को संयत किया और बोली, "फिर तूने क्या कहा।"

"मैंने तो साफ गप्प लगा दी, 'मियाँ-बीवी हैं, बोलेंगे नहीं ?'", पारो

ने अपने शब्दों में ढेर सारा एहसान, उदारता लादते हुए आगे कहा, "मैंने तो कहा, 'हमारी बाई साहब से नहीं बोलेंगी तो क्या आपके साहब से बोलेंगी ?' "

अन्तवाली बात झूठ थी। इतनी हिम्मत इसकी थोड़े हो सकती है। फिर भी वह चुप रही। चुप रह जाना ही बेहतर था। वह अपने कमरे में लौटने लगी तो नौकरानी आगे बोली, "वह यह भी बोल रही थी, 'तेरी बाई तो जवान है, दूसरा आदमी बना लेती। पर साहब बेचारे क्या करते ?' "

"बस, बहुत हुआ पारो, अपना काम कर।" उसने उसकी बेतुकी बातों से ऊबकर कहा और भीतर चली गयी। रोष से उसकी आँखें जलने लगीं। लोग कितने विचित्र हैं। नहीं आयी थी तो चिन्ता थी, आ गयी तो चिन्ता है। लोगों को कहीं भी चैन नहीं।

इन दिनों उसने अजीब बदलाव का एहसास अपने अन्दर महसूस किया है। पहले मन क्रोध या उदासी में बोलने को होता था, पर अब चुप रहने को मन करता है। अजब-सी निष्क्रियता घेरे रहती है। लगता है उसकी जगह कोई पत्थर चल-फिर रहा है। इस पर कितनी चोटें···कितनी ही आवाज दी जाये यह वही पत्थर का पत्थर ! इन्सान पत्थर सिर्फ बाहर से नहीं होता, भीतर से भी होता है···अन्दर का वजन और-और दबाता है।

राजेन्द्र के व्यवहार में उसने एक विचित्र-सा परायापन देखा। अब वह हर बात में उसकी जाँच-पड़ताल करता। बार-बार आकर देख जाता कि वह क्या कर रही है। याने उसकी सब गतिविधियों का वह बारीकी से निरीक्षण करता। वह घर पर आये किसी परिचित से बात करती तो वह उसे विचित्र ढंग से तकता, जिससे अन्दर-ही-अन्दर उसे घबराहट होने लगती। राजेन्द्र के पहले और बाद के नेचर में साफ अन्तर आ गया था। पहले वह मुँह से बोलकर गुस्सा निकाल लेता था, पर अब वह बोलता नहीं, बस पारखी, ताड़ती, तौलती नजर से उसका पीछा करता था, जिसके कारण वह अस्त-व्यस्त हो उठती थी। मन दुख से भारी हो उठता था। गुस्से से शब्द मुँह तक आते थे, पर वह कह नहीं पाती थी। दोनों को लगने लगा था कि दोनों एक-दूसरे के लिए अजनबी, अनजान व्यक्ति हैं, जिनका एक-दूसरे पर बोलने का हक नहीं बनता।

डायरियां लिखने की उसकी बचपन की आदत थी। बचपन से ही बाबूजी को लिखते देख उसने भी उनकी यह आदत चुपचाप अपना ली थी। शुरू में यह बड़ों की नकल की तरह उसने अपनाया था, पर बाद में धीरे-धीरे यह उसकी आदत में शुमार हो गया था। उसकी इस आदत को राजेन्द्र जानते थे, इसीलिए जब वह रसोई में या और किसी काम में व्यस्त होती, तो वह देखती उसकी डायरियों को पढ़ा गया है, जांच-पड़ताल की गयी है। राजेन्द्र के दिमाग में यह शक किसी ने बैठा दिया था कि जब वह मायके चली गयी थी, उसके पीछे कोई था जिससे वह बाद में शादी करती। इसी शक से भरकर उसकी सब गतिविधियों पर नजर रखी जा रही थी। यहां तक कि जो उसके दोस्तों की चिट्ठियां आती थीं, उन्हें भी राजेन्द्र चुप से पढ़ता, जैसे उन पत्रों में कोई सुराग ढूंढ रहा हो, किसी खजाने की खोज के लिए।

राजेन्द्र की इन हरकतों से उसे हँसी आती थी। आदमी कभी-कभी अपने सम्बन्धों को बचाने के लिए, बनाये रखने के लिए, ऐसी हरकतें, ऐसी पहरेदारी करता है कि सम्बन्ध और टूटने लगते हैं। वह किसी से बात करती, मिलती, तो वह बहुत ध्यान से उस पर नजर रखता। राजेन्द्र, जो पहले निरन्तर अपने काम में व्यस्त रहता था, अब निरन्तर उसकी चौकीदारी में अपना समय नष्ट करने लगा था, वह घर के किसी काम में व्यस्त रहती तो बार-बार झांक जाता कि वह क्या कर रही है। वह किसी दोस्त को पत्र लिखती तो वह बेचैनी से भरा कई-कई चक्कर लगाता, यदि वह अधूरा पत्र छोड़ किसी काम से बाहर चली जाती तो वह तुरन्त पढ़ने लगता। अब वह भी राजेन्द्र की इस हरकत से परिचित हो गयी थी, इसलिए वह भी पत्र लिखते-लिखते जानबूझकर उठकर चली जाती और काफी देर में लौटती ताकि वह आराम से पत्र पढ़ ले। लौटकर देखती, राजेन्द्र का परेशान चेहरा निश्चिन्त हो गया है और वह आराम से अपने कमरे में बैठा पेपर पढ़ रहा है। पर तब वह खुद बेचैन हो उठती, उसका मन फिर पत्र लिखने में या डायरी लिखने में न लगता। वह दोनों हाथों को टेबल पर रखे, सर को उस पर टेके बैठी रहती। न जाने कब तक वह ऐसे ही बैठी रहती…कभी-कभी तो घण्टों गुजर जाते, तब वह चौंककर उठती और

थकी, कटी डाल-सी अपने पलँग पर ढह जाती।

राजेन्द्र को पता चल गया था कि मायके में जब वह थी तो उन लोगों ने उसे कैसा तंग किया था, कितना अपमान किया था। उसे रहने नहीं दिया। अन्त में तंग आकर राजेन्द्र के घर लौटना उसने स्वीकार लिया था। अब तक राजेन्द्र को यह भय था कि वह मायके जा सकती है, पर अब उसके मन से यह भय भी मिट गया था। अब वह पूरी तरह समझ गया था कि इस घर में रहने के अलावा उसके पास दूसरा दरवाजा नहीं, जो उसे दो इंच जगह भी रहने के लिए दे सके। इसलिए अब वह दिलेर हो उठा था। अब उसे परेशान करने, दुख देने, अपमान करने में मजा आने लगा था। राजेन्द्र की आँखों में उसके लिए इतनी हिकारत, घृणा-सी भर गयी थी कि वह परेशान हो उठती थी। राजेन्द्र की दिन-प्रति दिन जहर उगलती नजरें, उसके व्यक्तित्व को और खोखला कर देती थीं।

घर में पड़े-पड़े वह घुट-सी गयी थी। शाम को उसने सोचा—थोड़ा घूम आये और जरूरी सामान भी ले आये। जब से वह पिता के घर से आयी, बाजार भी नहीं जा पायी है। वह टहलते हुए बाजार की तरफ चली गयी। दुकान पर कुछ परिचित महिलाएँ मिल गयीं और वह उनसे बात करने लगी। सामान खरीदने में समय हो गया। घर लौटी तो अँधेरा हो गया था। वह समझ गयी—राजेन्द्र लौट आया होगा। घर पहुँचते ही उसने देखा, राजेन्द्र गुस्से से भरा बैठा था।

"कहाँ चली गयी थीं तुम ?"

"सामान लेना था, दुकान में समय लग गया।" उसने धीरे-से सफाई दी।

"कौन-सी दुकान गयी थीं, जहाँ इतना समय लग गया ?"

"तो अब मुझे यह भी बताना होगा ?" राजेन्द्र का बोलने का ढंग उसे अच्छा नहीं लगा।

"हाँ।"

"और यदि मैं न बताऊँ तो ?" उसने दिलेरी से तनकर कहा। राजेन्द्र गुस्से से भन्नाते हुए अपने कमरे में लौट गये।

वह चुपचाप अपने कमरे में जाकर पलँग पर लेट गयी, अपमान से

उसका मुँह लाल हो गया। तो राजेन्द्र को दाग है कि दुकान की कहकर वहीं और गयी थी! इस त्रासदायक वातावरण में यह भला कैसे और कब तक जी पायेगी? जिन्दगी में विश्वास ही पूरा जमा पूँजी होती है और जब वही नहीं, तो कब तक जिया जा सकता है? अब ऐसे वातावरण को सहज बनाना कठिन था।

दोपहर को वह बालकनी में खड़ी थी कि उसने देखा—पीछे रहनेवाली चम्पाबाई जो अस्पताल में दाई का काम करती थी, उसकी वही नीले रंग की साड़ी पहनकर जा रही है। आश्चर्य से उसका मुँह खुला-का-खुला रह गया। उससे रहा नहीं गया, उसने आवाज देकर चम्पाबाई को रोक लिया। चम्पा-बाई झिझककर उसके सामने आ खड़ी हुई।

"यह साड़ी तुम्हें कहाँ मिली? यह तो मेरी है।"

"आपकी है? मगर मुझे क्या मालूम? आपकी नौकरानी दर्जे बेच गयी है।" चम्पाबाई ने घबराहट में अपना जुर्म स्वीकार लिया।

"हाँ, तो तुम चोरी का माल खरीदती हो। तुम्हारी तो पुलिस में रिपोर्ट होनी चाहिए।" उसे गुस्सा आ गया।

"हाँ, हाँ, करो पुलिस में रिपोर्ट।" चम्पाबाई हाथ नचाते हुए बोली, "पुलिस मेरा क्या करेगी? बड़ी आयी पुलिस का डर दिखानेवाली। ऐसे ही अपने घर के सामान की चिन्ता करनेवाली थी तो घर छोड़कर गयी क्यों थी! अरे, सब ऊपर से तारीफ दिखती है, भीतर पोल है। और देखो, रास्ता रोककर कैसा टोका-टोकी कर रही है।"

"देखो, मुँह सँभालकर बोलो, बहुत मुँह चढ़ी जा रही हो!"

"हाँ-हाँ, क्या कर लोगी? बड़ी साड़ीवाली आ गयी।" चम्पाबाई जोर-जोर से बोलने लगी। आसपास के दरवाजे खुलने लगे थे। उसका गुस्सा बढ़ता जा रहा था, पर वह अपने गुस्से को पी गयी। नीच के मुँह कौन लगे। उसे तो अब अपने आप पर गुस्सा आ रहा था, वह क्यों ऐसी औरत के मुँह लगी। वह भीतर आ गयी।

उसने दरवाजा बन्द कर लिया था, पर चम्पाबाई सबको सुना-सुनाकर बक रही थी। उसने अपने कानों पर हाथ रख लिये। गुस्सा आँखों के रास्ते पिघलकर बहने लगा। चम्पाबाई ने बीच बाजार में उसे नंगा कर दि...

यह पीड़ा उसे चीर रही थी। पीड़ा से उसकी छाती दुखने लगी। वह दरवाजे-खिड़कियां वन्द कर सारी दोपहर मुरदे की तरह पड़ी रही।

जिन्दगी वास्तव में कितनी विचित्र है, पता ही नहीं चलता। चलते-चलते जिन्दगी किसी ओने-कोने में कैसी-कैसी गलियों से मुड़ जाती है। कभी लगता है सारे अधिकार हमारे हैं, और कभी अनायास यह एहसास होता है, नहीं हम एक झूठे भ्रम को पाले हुए थे। हमें सारे अधिकारों से वंचित कर दिया गया है। तिनके पर भी हमारा हक नहीं वनता। अचानक लगता है कि समय के दावेदार ने हमें दिवालिया घोषित कर दिया है। और मन के कोने-कोने से निकलकर एकाएक सुख की वोली वोल दी है। सवकुछ कितना अनिश्चित-सा।

उसने अपने-आपको सहज वनाने में कोई कसर नहीं रखी। पुरानी वातों को दफन करना ही ठीक समझा। उन लड़ाइयों को लेकर जिन्दा रहना भी तो मुश्किल हो जाता न। अव राजेन्द्र को चाय देने से लेकर उसका विस्तर लगाने का काम भी वह खुद करने लगी थी। राजेन्द्र भी जैसे समझ गया था कि स्थिति सामान्य है, सारा तूफान उतर चुका है।

शाम को वह लाल रंग की जोधपुरी साड़ी में वाहर लॉन में आ वैठी। घास पर नन्हा खरगोश दौड़ रहा था। वह उसे दिन-भर पिंजड़े में वन्द रखती थी और शाम को थोड़ी देर के लिए खोलती थी, वरना वह कहीं भी जा छुपता था और उसे वापस वन्द करने में दिक्कत होती।

राजेन्द्र भी अपनी चाय लेकर स्टडी से इधर ही आ गये। उसने सर उठाकर राजेन्द्र को देखा। फिर वह खरगोश को देखने लगी। खरगोश नर्म-ठण्डी दूव में अपना सर छुपाये खेल रहा था, लोट रहा था।

"नीरा, पिक्चर अच्छी लगी है, चलोगी ?" राजेन्द्र ने पूछा।

"कौन-सी है ?"

"घर।"

"यह तो मेरी देखी हुई है। वावूजी के घर थी तव देख आयी थी।"

"और क्या-क्या करती थीं तुम वहाँ ?" राजेन्द्र ने तेज जहर-वुझे लहजे में अचानक पूछा।

"क्या मतलव ?" राजेन्द्र का इस तरह वोलना उसे खल गया, उसकी

भवें तन गयी।

"मतलब क्या! मतलब साफ है कि इतने दिन तुम वहाँ रहीं, किसी से दोस्ती तो हुई होगी। सुना है वहाँ काफी जोर-शोर से तुम्हारी शादी की बातें चल रही थीं। तुम्हारे इतने आशिक होंगे, यह तो हमें भी पता नहीं था।"

"देखो, जो कहना हो ढंग से कहो, इस तरह सस्ते मत बनो!" उसका चेहरा अपमान से लाल हो उठा, "शादी की बात चल रही थी, पर सब तुम्हारे मन का शक है।"

"वह तो मेरा कानूनी डण्डा बजा, तो तुम्हारा खूसट बेवकूफ बाप एक ही नोटिस में तुम्हें पहुँचा गया, वरना तुम तो शादी कर चुकी होती। सुना है बड़े कद्रदान तुम्हारे पैदा हो गये थे वहाँ।"

"देखो, तमीज से बोलो।" वह तमककर खड़ी हो गयी। "मेरे बाप को बुरा-भला कहा तो ठीक नहीं होगा। तुम्हारे मन में इतना ढेर सारा मेरे लिए शक है, यह आज पता चला। मुझे पहले ही पता था, यहाँ लौटने पर मुझे क्षण-क्षण अपमान मिलेगा। पर बाबूजी के, माँ के आगे मैं हार गयी। किसी भी युग में झगड़े के बाद पति के घर लौटने पर नारी को सम्मान नहीं मिला। इससे पहले कि अन्धे होकर तुम मुझे निकालो, मैं खुद जा रही हूँ, अब कभी न लौटने के लिए।"

राजेन्द्र सहमे-से उसे देखने लगे। वह तेज-तेज आगे बढ़ गयी।

"नीरा, सुनो तो···" राजेन्द्र ने उसे आवाज दी, पर वह भीड़ में भरी सड़क पर उतर चुकी थी।

हॉस्टल की सारी लाइट जल गयी थी। बेतहाशा कुमकुमों में जगमगाता दिल्ली शहर रात के अँधेरे में बेहद हसीन हो गया था। उसने पोर्च पर आकर कचरे के टीन को देखना चाहा, जहाँ चिड़िया का घोंसला फेंका गया था, पर वहाँ ढेर सारा अँधेरा होने के कारण उसे कुछ नजर नहीं आया। चिड़िया अभी भी अँधेरे में छटपटा रही थी। जहाँ इतनी रोशनी थी, वहीं ऐसी भी जगह थी, जिसे अँधेरा निगल गया था!

बूँद का हक

वह बेहद उत्सुक होकर बिछी पटरियों को सूनी आँखों से निहार रही थी, जिन पर से होकर ट्रेन जानेवाली थी। धूप का चश्मा उसके चेहरे की उत्सुकता को काफी हद तक ढँके हुआ था।

तभी ट्रेन आने का संकेत हुआ और घड़घड़ाती ट्रेन आ पहुँची। वह तुरन्त माँ और बाबूजी के पीछे होकर खड़ी हो गयी। प्लेटफार्म पर पीछे खड़ी भीड़ आगे आ गयी थी। कुली, खोमचेवालों की दौड़-धूप, आसपास के शोर से वातावरण में काफी हलचल पैदा हो गयी थी।

"वह है रेनू," माँ ने आखिर इतनी भीड़ में भी रेनू को देख लिया था।

उसने भी अब खिड़की से झाँकती नन्हीं रेनू को देख लिया था। रेनू वही पीले रंग का स्मोकिंग किया हुआ फ्रॉक पहने हुई थी, जो उसने पिछली गर्मियों में बनाया था। रेनू ने भी उन लोगों को देख लिया था। उसके भूरे बाल लम्बे सफर के कारण छितर-से गये थे। सफर से उसका नन्हा-सा भोला चेहरा कुम्हला गया था। उसने पहली नजर में अन्दाजा लगा लिया कि वह काफी दुबली हो गयी है।

उसने जैसा सोचा था, वैसा नहीं हुआ। उसने सोचा था, उसे देखते ही रेनू चिल्लाकर झपटेगी, 'मम्मी, मम्मी!'

पर ऐसा नहीं हुआ और पहली बार विश्वास का टुकड़ा, जो अब तक कहीं साँस की किसी झाड़ी में फँसा रह गया था, वह भी तार-तार होकर

तेज तूफान की नजर हो गया। मन किसी खाली वीराने में छूटे घोंसले की तरह होकर रह गया, जिसे कभी किसी परिन्दे के जोड़े ने आबाद किया था। और फिर जैसे बसा-बसाया घर ज्यों-का-त्यों छोड़कर दूसरे देश को उड़ गये हों!

"बढ़कर रेनू को आवाज दे," माँ ने कहा तो उसने आगे बढ़कर खिड़की पर रेनू के हाथ पर अपना हाथ रख दिया। बस, उसकी आँख नम हो चली थीं, बहुत कोशिश के बाद भी उसके मुँह से शब्द नहीं निकल पाये। रेनू झेंपी-सी फीकी हँसी हँस दी और झट दूसरी तरफ देखने लगी। उसने अचानक महसूस किया कि इन छह महीनों में रेनू बड़ी हो गयी है...हाँ, उससे भी बड़ी!

डिब्बे में काफी भीड़ थी। भीड़ धीरे-धीरे नीचे उतर रही थी। रेनू राहुल की उँगली पकड़े, अपनी नन्हीं गुड़िया को लिये नीचे उतरने लगी, जो राहुल के एक दोस्त ने रेनू के लिए कलकत्ता से भेजी थी। रेनू के ठीक पीछे उसके पापा यानी राहुल थे।

बहुत ही औपचारिक ढंग से सबने एक-दूसरे का स्वागत किया। बाबूजी इस वातावरण से अपने को काटे हुए थे और कुली, रिक्शा आदि की व्यवस्था में व्यस्त हो उठे थे।

माँ ने रेनू को गोद में उठा लिया और एक खिलौनेवाले ठेले की तरफ जान-बूझकर बढ़ गयीं। उस भीड़ में एकाएक वह और राहुल अकेले रह गये। फिर भी दोनों में से किसी ने इस अकेलेपन का लाभ नहीं उठाया, यहाँ तक कि कनखियों से भी एक-दूसरे को नहीं देखा। उसके माथे पर पसीना छलक आया। माँ का इस तरह चला जाना, जैसे दोनों को खलने लगा हो। उसने महसूस किया, तनाव की वह चादर दोनों के बीच अभी भी है, हटी नहीं है।

रेनू माँ की गोद से उतरकर राहुल की ओर दौड़ पड़ी। रेनू अभी भी सहज नहीं हो पायी थी। और वह खुद भी आगे बढ़कर राहुल के सामने रेनू को गोद में लेना नहीं चाहती थी, वह ऐसा कोई काम करना नहीं चाहती थी, जिससे उसकी मन की कमजोरी झलके। और इन्हीं स्थितियों को नकारने की गरज से वह स्टेशन भी नहीं आना चाहती थी, पर माँ की जिद के आगे वह

चुप हो गयी। माँ ने बार-बार उसे उपदेश देने के-से शब्दों में कहा था, "जब वह झुक गया पहले तो उसे लेने जाने में क्या आपत्ति है? औरत को कहीं-न-कहीं से नरम होना ही पड़ता है···"

"जाओ बेटा, नानी के पास जाओ।" राहुल ने दो-तीन बार रेनू को माँ की तरफ किया, पर वह ज़रा देर माँ के पास टिकती, फिर तुरन्त दौड़कर राहुल की उँगली पकड़ लेती, जैसे राहुल ही उसके सबकुछ हैं, बाकी लोग सब अनजाने हैं।

वह खुद सबसे कटी-कटी पीछे चलने लगी। कोई भी उसे देखता, तो यही सोचता, वह अकेली है। उसका अपना सारा ध्यान रेनू की ओर ही था। रेनू भी चोर-आँख से बार-बार मुड़कर उसे देख लेती थी, फिर अपनी ओर उसे ताकता पा तुरन्त सामने मुँह कर लेती। उन नन्हीं आँखों में उसके अपने लिए इतनी दूरियाँ थीं कि चलते-चलते उसके पैर जमने-से लगे।

इस वातावरण की सबको कल्पना थी, यानी मिलने पर दोनों तरफ से बातें शुरू होंगी, पर आश्चर्य की बात थी, वातावरण एकदम शान्त था। कोई भी अपनी तरफ से कोई बात छेड़ना नहीं चाहता था। जैसे पुरानी बातों पर मिट्टी डाल दी गयी हो। यह वातावरण उसे अच्छा लगा। उसके अपने मन का वह घुटा-घुटापन काफी हद तक छँट गया था।

पीछे आँगन में सब बैठे नाश्ता ले रहे थे। रसोई में उसका अपना काम समाप्त हो गया था, इसलिए वह झट अन्दर कमरे में चली गयी। माँ ने दो-तीन बार उसे आवाज दी कि वह भी साथ बैठकर नाश्ता कर ले, पर उसने सुना नहीं। राहुल ने शायद एक बार उसे देखा था, फिर वह पकौड़े खाने में व्यस्त हो गया।

कमर में खुंसा आँचल खोलकर ठीक करती वह बाहर आयी, तो देखा —बरामदे की सीढ़ियों के किनारेवाली नन्हीं दीवार पर रेनू लाल चमकीले सितारोंवाला फ्रॉक पहने, लाल बूट, लाल रिबन लगाये एकदम नन्हीं परी

बनी औंधी पड़ी सो रही थी। उसके दोनों पैर दीवार के दोनों तरफ लटक रहे थे। बहुत मासूम, बहुत ही प्यारी लग रही थी। बाहर आते ही उसके पैर ठिठक-से गये। ढेर सारा प्यार, ढेर सारी ममता एकाएक उमड़ आयी। उसने झुककर उसे गोद में ले लिया। रेनू जाग गयी और आँख खोलकर उसे देखने लगी।

इस बार उसकी आँखों में पहले-सा परायापन नहीं रह गया था। वह उसकी गोद में पड़ी-पड़ी अपनी भोली आँखों से उसे देखती रही, फिर उसकी आँखों से झिझक समाप्त होने लगी थी।

"मम्मी, क्या तुम बहुत बुरी हो ?"

"क्यों ?" उसका दिल धक्-सा रह गया।

"दादी, पापा, बुआ सब कहते हैं, तुम बहुत बुरी हो, इसलिए तुम चली गयी।" रेनू ने अपनी नाक खुजायी, "दादी बोलती है, तुमसे नहीं बोलना चाहिए।"

"नहीं, वे लोग झूठ बोलते हैं।" उसने फँसे हुए गले से कहा और रेनू को गोद में उठाकर पलँग पर लिटा दिया। वह बाहर आ गयी और बरामदे में रखी आरामकुर्सी पर बैठ गयी। आदमी सबको अपनी बात समझा सकता है, पर बच्चों को नहीं न ! दिल पर ठहरा भारीपन जैसे और भारी हो उठा था। होंठों पर दर्द के पहरे इतने सख्त लगे कि हँसी और नन्ही-नन्ही खुशियों की घुसपैठ की नाकाम कोशिश बेकार सिद्ध हो रही थी। नन्हे-भोले बच्चों के मन में इस तरह जहर भरने से फायदा ? पिछली बातें सुई की तरह उसकी आँखों में चुभने लगीं।

•

सुबह से बदली छायी थी। ठण्डी हवा के साथ बरसाती बारीक-बारीक छींटें पड़ रहे थे, जिससे वातावरण में और ठण्डक और गीलापन उतर आया था। खिड़की से सामने घर की खपरैल की छत का कोना दिख रहा था। छत के पीछे बिजली के खम्भे का सिरा था, जिस पर एक बेसबरा कौआ बैठा इधर-उधर देख रहा था, जिसे देखकर ही सोचा जा सकता था कि वह अपने शिकार की तलाश में है।

वह देर से सोफे में धँसी बैठी थी। सामने टेबुल पर रेनू कोरे पन्ने पर रंगीन लाइनें खींच रही थी। वह अपने काम में इतनी तल्लीन थी कि उसे कुछ याद नहीं था। वह दो बार उसे पुकार चुकी थी, पर उसने सुना नहीं था।

"रेनू, जाओ, पापा से खर्च के लिए पैसे माँग लाओ।" उसने थोड़ा जोर से कहा।

"लिस्ट बना दो ना, मम्मी!" रेनू ने आदत के अनुसार कहा, क्योंकि घर का सामान जब खत्म हो जाता, तब वह या तो कागज पर लिखकर दे देती या फिर कह देती थी। सामान कभी आ जाता, कभी नहीं भी आता। वह राहुल की इस आदत को जानती थी, इसलिए सामान जब दो-तीन दिन के लायक रह जाता, तभी से वह अपनी कोशिश शुरू कर देती, तब कहीं जाकर घर की जरूरत का सामान आ पाता। रुपये तो कभी उसे दिये ही नहीं जाते। पैसों को राहुल अपने ही हाथ में रखते थे। पैसों को लेकर कई बार झंझट हो चुका था। कई बार तो इस बात को लेकर उसका अपमान हो चुका था। आखिर उसने पैसों के लिए कहना ही छोड़ दिया। बस, जो सामान खत्म हो जाता, वह लाने को कह देती। इसी तरह गृहस्थी चल रही थी। कभी पति ने यह नहीं सोचा कि उसकी अपनी भी कोई इच्छा हो सकती है। औरतों को भी ढेर चीजों की आवश्यकताएँ होती होंगी। रोज की घरेलू चीजों को लेकर जब इतना झंझट होता था, तो दीगर चीजों के लिए वह खर्च क्यों करता? मन को उसने धमका-धमकाकर बेजान पत्थर-सा बना दिया था, जिसमें अब कोई इच्छा पैदा नहीं होती थी। उसने जान लिया था कि उसकी हद बस इतनी ही है, इससे आगे नहीं। रोज अपनी आवश्यकताओं को लेकर पति के आगे जाना, उसे भीख माँगने-सा लगता था।

"जाओ, कहो, घर के लिए पैसे दें।" उसने रेनू से कहा।

रेनू दौड़कर बाहर चली गयी। परन्तु लौटकर बताने की आवश्यकता नहीं पड़ी, क्योंकि राहुल का झल्लाया जोरदार स्वर वह सुन चुकी थी, "पैसा · पैसा···नहीं है पैसा, जाकर कह दो।"

इतना सुनते ही वह तड़प उठी और बाहर आ गयी। पर्दे को पकड़कर

बड़ा हो गया।

"घर में कुछ सामान मँगाना है।" उसने पर्दा पकड़े-पकड़े ही कहा।

"मुझे नहीं मालूम।" राहुल ने गुस्से से कहा।

"आपको नहीं मालूम, तो किसे मालूम है?" उसने उतने ही तीखे शब्दों में उत्तर दिया।

"ज्यादा बकबक मेरे सामने मत कर, समझी?" कहकर राहुल ने टेबुल पर रखा हुआ एक रजिस्टर उसकी ओर फेंका।

रजिस्टर उसकी नाक के पास चोट करता नीचे गिर गया। वह तिल-मिलाकर नाक पकड़कर वहीं देहरी पर बैठ गयी। आँख में ढेर सारा पानी छलछला आया, पर गुस्से की गर्मी ने आँख के पानी को वहीं सुखा दिया। उसने गुस्से से राहुल की ओर देखा, अच्छा हुआ, उस समय रेनू बाहर खेलने चली गयी थी।

"सँभालो अपना घर, मैं जा रही हूँ।" उसने गुस्से से उठते हुए कहा, "शर्म नहीं आती औरत पर हाथ उठाते हुए? मैं भी कमाकर दिखा सकती हूँ।"

"जब कमा सकती हो तो दूसरों का भेजा क्यों खाती हो?" राहुल ने नफरत से शब्दों को चबा-चबाकर कहा।

"ठीक है, अब यही करके दिखाऊँगी।" कहती वह उठी और भीतर चली गयी। थोड़ी देर में वह कमरे से बाहर आयी तो उसके हाथ में एक छोटा-सा बैग था। उसने एक बार भी राहुल और रेनू को नहीं देखा और निकल गयी।

जब उसे कमाना ही है तो कहीं भी रहकर कमा सकती है, दूसरों के टुकड़ों पर क्यों पड़ी रहे, सोचती वह रिक्शे पर बैठ रेलवे स्टेशन आ गयी।

ट्रेन के आने में अभी काफी समय था। वह सीमेण्ट की बेंच पर बैठी सामने बिछी सूनी पटरी को निहारती रही। उसे लग रहा था—पीछे राहुल उसे लेने जरूर आयेंगे। पर ऐसा नहीं हुआ, उसे बुलाने कोई नहीं आया। एक बड़ा झंझट, एक बड़ा जाल, एक बड़ा मोह, एक बड़ी लोक-लाज वह पीछे ढकेल आयी थी।

उसकी आँख में एक भी आँसू नहीं था। उसे खुद आश्चर्य हो रहा था।

वे आँखें जो बार-बार रो पड़ती थीं, उनमें इतना बड़ा हादसा होने पर भी एक आँसू नहीं था। छोटी थी और परिवार में किसी से झगड़ा हो जाता, तब वह शिकायत करने माँ के पास जाती, तो एक शब्द बोलती और देर तक रोती, जिससे माँ के पल्ले कुछ नहीं पड़ता और वह खीजकर बोलती, "या तो तू पहले रो ले, या बोल ले, रोयेगी ज्यादा, बोलेगी कम।"

माँ के घर आकर उसकी स्थिति विचित्र हो गयी थी। एक निर्णय, जो वह ले चुकी थी, उसे पलटना नहीं चाहती थी। बाबूजी, जो उसके कष्टों को समझ रहे थे, वे उसके साथ थे, क्योंकि इस स्थिति को वे भी अपनी जिन्दगी में झेल चुके थे। पर माँ और भैया उसे अपनी समूची ताकत से पीछे ढकेलना चाहते थे।

माँ ने उससे बोलना छोड़ दिया था, जैसे उनके पास बोलने के लिए कुछ नहीं था और था तो बस कटु जहरबुझे शब्दों के अलावा एक शब्द नहीं। भैया के लिए वह एक समस्या बन गयी थी। उनके कहे अनुसार उसके कारण, उनके दोस्तों में, समाज में, उनकी बदनामी हो रही थी।

"स्थिति समझने की कोशिश करो, लड़की यहाँ न आती तो कहाँ जाती? क्यों उसके जख्मों पर दिन-रात नमक छिड़कती रहती हो?" बाबूजी ने एक दिन तंग आकर माँ से कह ही दिया।

"नहीं, उससे कह दो—वह वापस राहुल के घर लौट जाये। शादी-शुदा लड़की का घर बैठना क्या अच्छी बात है?" माँ ने गुस्से से तनतनाते हुए कलाई में पड़ी चूड़ियों को कसते हुए कहा, "कैसे बाप हो तुम, लड़की को घर पर बैठाकर नाक नीची करवाओगे? दुनिया क्या कहेगी?"

"वह तो खुद अपना कमा लेगी, नौकरी कर लेगी, कौन तुम्हारा खायेगी! पढ़ी-लिखी समझदार लड़की है, कौन गाँव की अनपढ़ जाहिल है!" बाबूजी ने सफाई दी।

"हाँ, और तुम उसके समझदार बाप हो।" माँ ने गुस्से से कहा, "लड़की कमायेगी और तुम देखोगे? अरे, सोचा था, बुढ़ापे में सारे काम निपट गये हैं, तो घूमेंगे-फिरेंगे, तीर्थ करेंगे, अब ऊपर से यह जिम्मेदारी आ

पड़ो। जवान लड़की को घर में बैठाना क्या ठीक है ? वह घर में इज्जत से रहेगी, तो भी दुनिया नाम धरेगी। मैं साफ कहे देती हूँ, उसे पहुँचा आओ।"

"पहुँचा आओ, पहुँचा आओ!" बाबूजी भड़कते हुए बोले, "क्या वह कोई होलडाल है, जो उसे जाकर पटक आऊँ। वह जाना नहीं चाहती, तो कैसे पहुँचा आऊँ ?" बाबूजी गुस्से से उठे और सीधे बाहर आ गये।

वह अपने पलँग पर लेटी दम साधे सब सुन रही थी। बाबूजी बाजू-वाले कमरे मे आकर पलँग पर आँखें बन्द कर चित लेट गये। पर वे सोये नही थे, जैसे आँख बन्द किये अपने-आपको घर के वातावरण से काटकर पड़े हो। घर मे एकदम सन्नाटा-सा खिच गया था। ऐसा ही होता था रोज, जब भी घर मे झगडा होता, झगड़े के बाद वातावरण मे तनाव, निस्तब्धता छा जाती।

अप्रैल का महीना था। नीम का पेड़ फूलो से लद गया था। नन्हे-नन्हें सितारो के आकारवाले फूल बड़े भले-से लगते थे। उसका बिस्तर खिड़की के पास था। खिड़की से लगी दो हाथ चौड़ी गली थी। उसके बाद ऊँची दीवार थी और दीवार से लगे जामुन और नीम के ऊँचे-से पेड़ थे। दीवार की मुँडेर नीम के बासी फूलों से ढक-सी गयी थी। हवा जब भी चलती, नीम के फूल हवा के साथ बहककर आते और बिस्तर, तकिये और कमरे के फर्श पर बिखर जाते। वे देखने से बड़े भले लगते थे। नीम के फूलों की कडवी, तीखी गन्ध हवा मे घुल-मिल जाती थी। इतने दिनों मे जैसे वह कड़वे नीम के इन फूलों से ही अपने को जोड़ पायी थी। यही वे फूल थे, जो उसके परेशान, थके दिमाग को अपनी तमाम कड़वाहट के बाद भी शान्ति दे जाते थे।

वरना उसे तो लगता, बहुत-बहुत सहजे हुए विश्वास, आपसी रिश्ते लहूलुहान हो गये हैं। झटके की तकलीफ, जिबह हुए बकरे की तड़प और सारी नसों से निचुड़ा बूँद-बूँद खून…

बाबूजी की तबीयत हमेशा खराब रहती थी। सारी उम्र सच की

राह चलते रहे और सताये जाते रहे। यह तो उन्होंने अब समझा था कि जीने के लिए थोड़ी-बहुत मक्कारी की भी जरूरत पड़ती है। वरना आदमी हर जगह जीतकर भी जिन्दगी की लड़ाई हार जाता है। बाबूजी, जो जिन्दगी-भर मुस्तैद सिपाही की तरह डटे रहे थे, और अब बुढ़ापे में सारे हथियार रखकर जब अलग होनेवाले थे, तब हठात उन्हें पता चला था कि नहीं, अभी एक और जंग में उन्हें शरीक होना है।

ढेर सारी बातें थीं, जो उसके परेशान दिमाग को और परेशान कर रही थीं कि तभी बाहर से भैया ने दरवाजा खोला। भैया अपनी पत्नी रत्ना के साथ अन्दर चले आये। जब से वह आयी थी, भैया ने रात ग्यारह बजे लौटने का नियम ही बना लिया था। जब सब खा-पीकर सो जाते, तब दोनों पति-पत्नी लौटते और चुपचाप खाना खाकर सो जाते थे। इस तरह यह भी उसके खिलाफ बगावत का मोर्चा था।

भैया उससे बात करना तो दूर, उसके साये से भी भागने लगे थे। हमेशा घर में गुस्से में आकर तोड़-फोड़ कर अपना रोप व्यक्त करते। और रत्ना उसके हाव-भाव पर कड़ी नजर रखती थी कि वह क्या पहन रही है, क्या कर रही है? थोड़ा भी वह ढंग से कपड़े पहन लेती तो वह उसे सर से पैर तक घूरकर देखती, मानो कह रही हो—'देखना ननदजी, दूसरा ब्याह करेंगी, तभी तो पति का घर छोड़ आयी हैं।' यह बात उन्होंने घुमा-फिराकर उसके सामने दो-एक बार कही थी।

बाबूजी की तबीयत खराब चल रही थी। घर का वातावरण उसके लिए तथा बाबूजी के लिए असहनीय हो उठा था, इसलिए जब दोनों बाहर जाते, तो कई-कई घण्टे में लौटते। बाबूजी ने उसे अपना निर्णय बता दिया था। यानी वे उसके साथ रहने को तैयार हो गये थे। पर उस छोटे-से शहर में क्या नया मकान ढूंढ़ना आसान काम था? उस दिन वह और बाबूजी रिक्शे पर किराये का घर ढूंढ़ने निकल पड़े थे। माँ को तथा भैया को यह बात मालूम नहीं थी। वे दोनों डॉक्टर के घर जाने का बहाना बनाकर घर से निकले थे।

बाबूजी एकदम चौंककर उसे निहारने लगे, पर उसका चेहरा घूंघट के के कारण वे देख नहीं पाये।

"मैं भी यही सोचता हूँ, बेटा, जब तू इन खूँखार भेड़ियों के बीच रह सकती है तो वहाँ भी रह सकती है।" बाबूजी ने बहुत बुझे तथा थके हुए शब्दों में कहा, जैसे उन्होंने अपनी हार स्वीकार कर ली हो।

"तो राहुल को लिख दूँ, तुझे लेने आ जाये ?" बाबूजी ने उसकी पीठ पर हाथ रखते हुए कहा।

"हाँ।" इससे आगे उससे बोला नहीं गया।

घर लौटकर वह अपने पलँग पर तकिये में मुँह डालकर पड़ गयी। बाबूजी ने उसके निर्णय की सूचना माँ को और भैया को खाने के समय दी शायद। सुनकर कोई अपनी तरफ से कुछ नहीं बोला, पर सबके चेहरे पर प्रसन्नता छा गयी। उसे सारे समय यही डर लगता रहा कि कहीं माँ उसके निकट आकर उपदेश देना न शुरू कर दे, पर उसे आश्चर्य लगा, माँ उसके निकट नहीं आयी और उसे अपना यह अकेलापन बहुत अच्छा लगा, बिलकुल उसी तरह, जैसे सुरक्षा का कवच हो।

सोचते-सोचते उसकी आँखें थकने लगीं। शाम गहरी होने लगी थी। रेनू पता नहीं कब पलँग से उठकर भाग चुकी थी।

क्या रेनू अब पहले की तरह उससे खुल नहीं पायेगी? सोचते ही उसकी आँखें छलछला आयीं। भीड़! लेकिन भीड़ में भी इनसान को अपने जख्म रुलाते हैं, कष्ट देते हैं। पता नहीं कैसे लोग अपनों को भूल जाते हैं। बहुत मन में इनसान औरों में अपने को बाँटे-बिखेरे रहता है, फिर भी यह अहसास नहीं भूलता कि उसके अपने लिए कुछ···कुछ नहीं। इनमें से एक बूँद पर भी उसका हक नहीं। कितना अदना और बेबस होता है इनसान!!

बाबूजी, राहुल और भैया शायद पहले निकल गये थे। बाबूजी खाने के बाद पहले जाते हैं। आज भैया का प्रोग्राम बदल गया था, आज वे शाम से ही घर पर थे।

बाहर आँगन में लाइन में सबके बिस्तर लगे थे। वह पलँग

आकर ठिठक गयी। माँ ने जान-बूझकर रेनू को उसके पलँग पर लिटा दिया था। वह देर तक चुप खड़ी रही, फिर वह अपने पलँग की ओर बढ़ गयी।

उसने मच्छरदानी उठायी। देखा, रेनू औंधी पड़ी सो रही थी। उसने धीरे-से रेनू को किनारे खिसकाया और फिर खुद उसके बगल में लेट गयी। रेनू के बगल में लेटते ही उसने अचानक महसूस किया कि उसकी छाती में दूध उमड़ने लगा है, नसें खिचने लगी हैं, जैसा कि जब रेनू नन्हीं-सी थी, तब होता था। वह आश्चर्यचकित रह गयी।

रेनू ने नींद से जागकर उसे देखा, फिर वह सो गयी। रेनू ने आदत के मुताबिक नींद में ही अपना हाथ उसकी ओर बढ़ाया, धीरे-धीरे, फिर उससे लिपटकर सो गयी। रेनू की हमेशा इस तरह सोने की पुरानी आदत थी।

उसने प्यार, ममत्व से उमड़कर रेनू को अपनी बाँहों में समेट लिया। लगा, जैसे मन पर रखा कई-कई मन का बोझ हट गया हो।

गुरुमन्त्र

कौवा सरसों के तेल की कटोरी को उलटकर झट खपरैल के छप्पर के बीचों-बीच वाली मुंडेर पर बैठा कांव-कांव करने लगा। उसकी कर्कश पुकार कान को फाड़ रही थी।

सुकरी औंधी पड़ी कटोरी को भूमि पर से उठाते भूमि पर गिरे तेल को निराशा से देखने लगी। उसके दोनों हाथ तेल में सने थे। वह धूप में बैठकर आराम से देह में तेल चुपड़ रही थी कि बीच में कौवे ने आकर सब खेल चौपट कर दिया।

"दादी आयेगी तो बैठा रह, नहीं आयेगी तो भाग जा," मूँगा, कुंदरू तोड़ते पलटी, बोली और दोनों हाथों को हवा में हिलाया।

कौवा दो-तीन बार ढीठ बना चिल्लाता रहा। फिर अन्त में उड गया और मूँगा का मन फिर धप्प-सा बुझ गया।

"सच रे सुकरी, दीदी नहीं आयेगी," मूँगा निराशा से बोली, फिर जैसे अपने-आपसे बुदबुदायी, *'हाँ, दीदी को आना होता तो जाती ही क्यों ?'*

"दीदी आने के लिए थोड़े ही गयी हैं। दशहरे में पूरे तीन बरस हो जायेंगे," सुकरी हाथ में लगे तेल को देह में चुपड़ते बोली, "अब तो दीदी के बाल-बच्चा भी हो गया होगा। अब दीदी कहीं हाट-मण्डई में दिख भी गयी तो कैसे पहचान में आयेंगी। देखा ना, तीन साल में तू कितनी बडी दिखने लगी है।"

"हाँ रे, तीन बरस हो जायेंगे दीदी को गये," कहती मूंगा दीवाल से टिक गयी।

"दीदी गयी, तेरा भी ब्याह हो जायेगा, मैं अकेली रह जाऊँगी," मुकरी अपना आँचल उतारकर झटकती बोली, जिस पर दो-तीन चींटियाँ चढ़ गयी थीं।

"नहीं मैं ब्याह, नहीं करूँगी। लखमी की माँ बता रही थी, 'वह बहुत उमर का है।' वह तो मेरे बाप-जैसा लगेगा।"

मूंगा रात को उठी तो देखा, सामने ओसारे में मौसी अभी भी पसरी पड़ी है। उसके आगे दोने उलटे पड़े थे। वह बाहर आ गयी। चुपचाप अँधेरे में कुतिया बैठी थी, जिसे देखकर वह डर गयी। अचकचाकर उसने दरवाजे को पकड़ लिया। कुतिया थोड़ी हिली और उसने चैन की साँस ली। अपने पर ही हँसी आयी, जो वह घर की कुतिया से भी डर गयी थी। बाहर चारों तरफ अँधेरा-ही-अँधेरा था। ऊँचे-ऊँचे पेड़ शान्त, डरावने से खड़े थे। रात बाबा और मौसी देर रात-गये तक शराब पीते रहे थे। नशे में धुत बेसुध-सी पड़ी थी मौसी, जिसे अपना, शरीर का, कपड़ों का कुछ होश नहीं था। बाहर बाड़ी के पास बाबा का रिक्शा खड़ा था, जिस पर मतरू सो रहा था। पता नहीं इसे रिक्शे में कैसे नींद आ जाती है!

मौसी की जाँघों तक चढ़ आयी साड़ी को उसने ठीक किया और मौसी को जगाया, "मौसी उठ, ठीक होकर सो।"

कई बार जगाने पर वह जागी, करवट लेकर फिर सो गयी। उसके मुँह से लार टपक रही थी। उसे हँसी आ गयी, मौसी मर्दों की बराबरी क्यों करती है? महुए की शराब की गन्ध सारे घर में भरी थी। चूहे जूठे दोनों को चाट-चाटकर भाग रहे थे। छत के बाँस से खड़खड़ाता मोटा चूहा उतरता दिखा, फिर उसे देख वह ठिठककर मुड़ गया।

"मैया री, कितने मोटे-मोटे साँड चूहे हो गये हैं! हरामजादी पूसी टाँग फैलाकर सोती है। एक भी चूहा नहीं खाती। सही है, आराम की जिन्दगी से सब सुस्त हो जाते हैं।"

वह उठी और भीतर कोठरी में आ गयी। दूसरी कोठरी में बाबा पसरा पड़ा था, "मुकरी की मौसी, ऐ मुकरी की मौसी!" बाबा दो बार हाँक देता है,

उस दिन सुबह से ही पानी बरस रहा था, फिर भी वह बाबूजी के साथ घर ढूँढने निकल पड़ी थी। अब वह शीघ्र ही इस वातावरण से निकल जाना चाहती थी। घर के वातावरण मे उसे साँस लेने मे भी कठिनाई होने लगी थी। वह किसी श्रीवास्तव का मकान था। घुमावदार सीढ़ियाँ थीं, जो ऊपर तक चली गयी थी और हर एक-दो सीढ़ी से लगे एक-दो कमरो का घर था। वह बाबूजी के साथ घर देख सीढ़ियों से नीचे उतरी। पानी काफी गिर रहा था। घर पसन्द आ गया था, बस बात करना ही शेष था। वे लोग नीचे उतरे, सड़क सूनी थी, अचानक पानी तेज हो गया। वे लोग नीचे बनी बरसाती में खड़े हो गये।

चबूतरे पर एक आठ-नौ साल का लड़का खड़ा केला खा रहा था। उसके गन्दे, फटे, चिक्कट कपडे देख उसने अनुमान लगाया—लडका भीख माँगने-वाला था शायद। वह एक थैला पकड़े था, जिस पर ढेर सारी मक्खियाँ बैठी थी। उसके शरीर से इतनी दुर्गन्ध आ रही थी कि वहाँ खड़ा रहना मुश्किल-सा हो गया था। पहले उसने सोचा—भगा दे फिर पता नही क्या सोच, या उसके मासूम चेहरे को देख उसे तरस आ गया। उसने उससे योंही समय बिताने की गरज से पूछ लिया, "क्या काम करता है?"

"कुछ नहीं!" उसने सपाट-सा उत्तर दिया।

"कहाँ रहता है, तेरा घर कहाँ है?"

"बाप मर गया और माँ दूसरा आदमी बनाकर चली गयी।" उसने इतमीनान से केला खाते हुए उत्तर दिया।

उसके उत्तर पर उसे हँसी आयी, "तुझसे क्या बोली?"

"बोली, मैं खाना माँगने जा रही हूँ और भाग गयी। मैं रात तक उसका रास्ता देखता रहा, फिर दूसरे दिन से खुद माँगकर खाने लगा। जहाँ भी जगह मिलती है, सो जाता हूँ।"

"तेरा बाप नही है?"

"मैं छोटा-सा था, तभी मर गया।"

पता नही क्यों, उस नन्हें-से बच्चे से बात कर उसे धक्का-सा लगा। माँ के प्रति उसके मन में कैसी घृणा-सी बैठ गयी है और वह खुद कितना लापरवाह हो गया है। उसे अब जैसे किसी की जरूरत नही। वह अपनी ही

जिन्दगी में मस्त है। उसे लगा, जैसे वह इस लड़के के रूप में रेनू को देख रही है। वह मन-ही-मन सहम-सी गयी। वावूजी उसके मन की स्थिति समझ गये थे इसलिए उसे वहाँ से वैसे ही पानी में लेकर चौराहे की ओर बढ़ गये।

इन्सान को कदम-कदम पर अपनों की जरूरत पड़ती है, ताकि अँधेरे का अहसास कम हो। पर लोगों के साथ रहने पर भी, चलने पर भी, आदमी को अपना अँधेरा तो खुद ही झेलना पड़ता है।

अजीव गमगीनी से भरे गुजरते जा रहे थे दिन। उसकी समझ में कुछ नहीं रहा था कि वह क्या करे ! वह निर्णय नहीं कर पा रही थी। अपने खुद के मिटने का जश्न वह तिल-तिल मिटते हुए देख रही थी। वीरानी उसकी जिन्दगी में कुछ इस कदर हमसफर वन गयी थी कि वह जहाँ जाती, उसे लगता—हँसता-फूलता गुलिस्ताँ भी वीरान हो गया है।

दिन महीनों में तब्दील होने लगे थे। उसे आश्चर्य होता था—कैसा घर है यह, जहाँ किसी से विना वोले भी महीनों कट गये। उससे केवल वावूजी ही वोलते थे, वाकी सवने वोलना वन्द कर दिया था। उसने भी जैसे अपने-आपको समेटकर सिर्फ पलंग तक कर लिया था। वह सिर्फ एक वार ही भीतर खाना खाने जा पाती थी। किराये पर घर मिल गया था, पर माँ ने ऐसा हंगामा खड़ा किया कि फिर उसने वहाँ जाने का साहस छोड़ दिया। उसे वार-वार लगता था—वह कुएँ से तो निकल आयी है, पर दलदल में फँस गयी है।

उस दिन हफ्तों वाद वादल छँटे थे और साफ उजली धूप आने लगी थी। उसने वाल धोये थे और खुले वालों को पीठ पर फैलाये वह आँगन में विछी खाट पर वैठी थी। वावूजी वेंत की कुर्सी पर पैर फैलाये पेपर पढ़ रहे थे। भैया जल्दी ही ऑफिस से आ गये थे, आते ही उन्होंने एक नीले रंग का अन्तर्देशीय वावूजी की ओर वढ़ाते हुए कहा, "राहुल का पत्र आया है, उसे अपनी गलती का अहसास हो गया है, माफी माँगी है।"

वावूजी सतर्क हो गये···वह पहले की तरह ही वैठी रही। माँ रसोई से निकलकर आ गयी थी और भाभी दालान में दरवाजे के पास आकर खड़ी

हो गयी थी। माँ ने बाबूजी से कहा, "पत्र पढ़कर सुनाओ।"

"मगर जहाँ लड़की का मान-सम्मान नहीं, वहाँ लड़की को जबरदस्ती भेजने से फायदा?" बाबूजी ने पत्र को बिना पढ़े वापस तह करते हुए उत्तर दिया।

बाबूजी की बात से वहाँ एक धमाका-सा हुआ, सबने बाबूजी को 'सठिया गये हैं'-वाले अन्दाज से देखा।

"अपने साथ बेटी को भी चिता पर ले जाना।" भैया ने गुस्से से तन-तनाते हुए गले की टाई खींची और उतारकर वहीं फेंकते दनदनाते हुए अपने कमरे में चले गये।

थोड़ी देर को वहाँ का वातावरण निस्तब्ध रह गया, जैसे हवा तक को लकवा मार गया हो। बाबूजी का मुँह अपमान से नीचे झुक गया। माँ के चेहरे पर ताजगी-सी आयी। बाबूजी के अपमान से उनका मन प्रसन्न हो उठा था। उन्होंने तीखी आँखों से बाबूजी को घूरा, फिर उसकी तरफ मुड़कर बोली, "यह लड़की, लगता है, इस घर को खाकर दम लेगी।"

उसने चेहरा खिड़की की ओर घुमा लिया, जहाँ एक सफेद दीवार थी। दुख, क्षोभ से उसका मन छलनी हो गया था। इधर कुछ महीनों में उसने देख लिया था कि सिवाय अपमान के उसे कुछ नहीं मिला। बाबूजी उसका साथ दे रहे थे, इस कारण उनका भी कदम-कदम पर अपमान हो रहा था, जिससे वह भीतर-ही-भीतर टूटते जा रहे थे, पर ऊपर से कोई भाव प्रकट नहीं करते थे।

एक तेज विचार उसके मन में आया, क्यों न वह लौट जाये! राहुल अपनी गलती को मान रहा है। यहाँ से अब उसे हटना चाहिए, इस तरह कम-से-कम बाबूजी को तो निजात मिल जायेगी। वह अपने साथ-साथ उनकी भी हत्या कर रही है।

घर में मौत का-सा सन्नाटा खिंच गया था। बाबूजी उठकर बाहर चले गये, शायद उनकी आँखें भर आयी थीं। थोड़ी देर में माँ भी उठकर कमरे की ओर बढ़ गयी। वह अकेली नाखून कुरेदती, शून्य में तकती बैठी रह गयी।

शाम को वह और वाबूजी घर के सामनेवाली सड़क पर टहलने निकल गये थे। वह एकदम चुप थी। वाबूजी अब देख रहे थे कि वह काफी दुबली और चुप-चुप रहने लगी है, इसलिए वे भी मन से चाहने लगे थे कि वह राहुल के पास लौट जाये। वे उसकी एकाएक चुप्पी से सहमने लगे थे।

"बेटा, सारी उम्र इन लोगों ने मुझे तंग किया। नौकरी करने पर मजबूर करते रहे, पर अब मैं इनकी कोई बात नहीं मानूँगा और अपने गाँव लौट जाऊँगा। तेरी माँ और तेरे भैया को सिर्फ पैसे से मोह है, वही लोग सँभालें अब सारा राज-पाट।" वाबूजी ने अपनी बात शुरू की, "मैं तो बस जाने ही वाला था, पर अब जब तक तुम अपने पैरों पर खड़ी नहीं होतीं, तब तक कहीं नहीं जाऊँगा, वरना ये लोग चील की तरह नोचकर तुम्हें खा जायेंगे।"

वह चुप रही और धीरे-धीरे वाबूजी के साथ कदम-से-कदम मिलाती चलने लगी। वह मन से काफी हद तक थक गयी थी। अब तक वह जिन्दगी को सही करने की कोशिश करती रही थी, पर नहीं हो पायी। एक मोर्चा हो, तो आदमी लड़ ले, पर हर कदम पर खतरा, मोर्चा हो, तो आदमी कितनी हिम्मत कर सकता है? वह देख रही है, लौटना उसका निश्चित है, वरना उसकी देह की आखिरी बूंद को भी ये लोग सोख लेंगे।

हजारों मर्तबा किये हुए हिसाब-किताब को मन दोहराने लगा, पर हिसाब-किताब वहीं लोग करते हैं, जिनके पास कुछ बचा होता है। जो खुद दिवालिया हो, जिसके पास फूटी कौड़ी नहीं, वह क्या हिसाब-किताब करे? पर हाँ, बैठा-बैठा वह कैंसिल हो गये सवाल को बार-बार जोड़ता-घटाता रहता है, गलती कहाँ हो गयी जिसकी वजह से कुल जोड़ सिफर ही पल्ले पड़ा।

कभी जिन्दगी में ऐसी विवशता भी आती है कि आदमी अपने मन से ही इस कदर लाचार हो जाता है कि जान-बूझकर डूबना चाहता है···समझ-बूझकर काँटों-भरी राह पर चलना पड़ता है।

"वाबूजी, मुझे पहुँचा दीजिए। मैं अब उसी घर में लौटना चाहती हूँ।" उसने लौटते हुए शाम के धुंधलके का फायदा उठाया और आखिर में वाबूजी से कह ही दिया।

लम्बी-लम्बी हांक रहा था। शराब सबको चढ़ गयी थी और ओसारे में बैठे लोगों की आवाज तेज और तेज होती बाड़ी लांघकर गली तक जा रही थी।

"ले दादा, ले, मैं तो लड़की हार गया," कहते हुए बाबा ने दस नये पैसे के सिक्के को भूमि पर चित डाल दिया।

रात को जब सब चले गये, बाबा ने इतनी पी ली थी कि सुध खो बैठा था। वह वहीं, ओसारे में ओखली के पास बिछे बोरे पर उलटे लोटे की तरह लुढ़क गया था। मौसी ने आज जरा नहीं पी थी। वही उन लोगों को बाहर तक छोड़ने गयी थी और हर काम में, हर बात में आगे-आगे रही।

कुएँ के पास मूंगा अँधेरे में खड़ी थी। मौसी बाड़ी का फाटक सुतली से कसते हुए जब लौटी तो अँधेरे में उसे खड़ा देख चौंक गयी, "तू यहाँ क्या कर रही है?"

"मौसी," उसने अँधेरे में मौसी का हाथ पकड़ लिया, "कोतवाल का बेटा वही था न जो आगे-आगे जा रहा था?"

"हाँ।"

"तो तू सुन ले, मैं उसके लिए नहीं जाऊँगी। वह अच्छा नहीं लगा। मैं भी दीदी की तरह भाग जाऊँगी।"

"क्यों, क्या हुआ री? भली सूरत तो है। मरद की सूरत नहीं देखते, कमाई देखते हैं। खेती-बाड़ीवाले के घर जा रही है, और क्या चाहिए?"

"तूने देखा नहीं, बाबा ने जब उसे शराब पिलायी तो कैसा बेवकूफ-सा घिघियाया हुआ-सा हँस रहा था।"

"गिनकर पाँच कौड़ी दे रहा है, इतना कौन देगा री?" मौसी उसे समझाते हुए बोली, "ज्यादा ना-नू मत कर, तेरी दीदी रेलवाईवाले के साथ भाग गयी। बिरादरी में नाक नीची कर गयी और तू लम्बी नाक लिये बात करती है।" मौसी रोब से बोली, फिर जाने क्या सोच मौसी उसे वहीं लकड़ी की बल्ली पर बिठाकर पुचकारती-सी बोली, "मूँगा, अपने से अच्छे मरद से ब्याह नहीं करना चाहिए, अपनी बात नहीं रहती। अपने से कम अच्छे मरद से ब्याह करने से औरत राज करती है राज। जैसा चाहे मरद को नचा सकती है—समझी।" मौसी राज की बात उसके सामने खोलती-सी बोली और खुद कठल-कठलकर हँसने लगी। वैसे ही, जैसे कोई गुरु अपना अन्तिम गुरुमन्त्र देता हुआ हल्का हो रहा हो।

अपनी जमीन

गोदावरी ने हताश होकर हारी, सूनी और रो-रोकर छिली आँखों की कोर से एक बार फिर अपने मृत बेटे पर नजर डाली और फिर पति के दुख से जड़ हुए चेहरे को देखा, जो पिछले एक सप्ताह से भागते-भागते थक गया था और इतनी भाग-दौड़ के बाद भी बच्चा नहीं बच पाया था।

चारों लड़कियाँ रो-रोकर थकी-सी, सुन्न दीवार से टिकी बैठी थीं। अस्पताल का वही चिर-परिचित वातावरण था, जो वह पिछले एक सप्ताह से देखती आ रही थी। सारी हलचल वही पहचानी-सी थी। दुनिया का सारा काम उसी गति, उसी रफ्तार से चल रहा था, बस इतने···इतने लोगों में किसी के मर जाने से दुनिया का काम तो नहीं रुकता न !

बरामदे में फिनाइल का पोंछा आज भी दिया जा रहा था, सुन्दर-सुन्दर साड़ियों में डाक्टरनियों का झुण्ड इस वार्ड से उस वार्ड आ-जा रहा था। सफेद मोजों में गम्भीर चेहरा लिये नर्सें डरावनी शक्लों में इधर-से-उधर तेज-तेज आ-जा रही थीं। मरीजों का वही रोज का क्रम था, कष्ट से कराहते रुदन आज भी हवा में रचे-बसे थे। अस्पताल का वही चुप सन्नाटे से भरा वातावरण था। सब ज्यूँ-का-त्यूँ था, बस, इतना अन्तर हो गया था कि कल तक उसकी गोद में खेलता बच्चा लेटा रहता था और आज वह चुप निष्प्राण पड़ा था···बिना हिले-डुले आज उसकी न आवाज थी, न जिद, न कोई माँग, आज वह शान्त-सा पड़ा था। उसकी आँखों पर ढकी पलकें

पत्थर की तरह ठण्डी और भारी हो गयी थी।

वह जब भी बेटे को निहारती, उसका कलेजा मुंह को आता, ऐसा जान पड़ता, कलेजा मुँह के रास्ते बाहर आ जायेगा, लगता इतनी···इतनी ज़ोर की आवाज के साथ रोये कि सारी दुनिया को इस छोर से उस छोर तक सुनायी दे, सबको पता चल जाये कि उसका बेटा उससे छिन गया है, पर ऐसा वह कर नहीं सकती थी। उसकी ममता से भरी सिसकियाँ कलेजे में घुटकर रह गयी थीं।

जब डाक्टर ने बच्चे की जाँच कर नर्स से कहा था कि बच्चा मर गया है, लाश उसके घरवालों को सौंप दो, तो वह पागलों-सी फटी-फटी आँखों से बच्चे को देखती भयानक आवाज में रोयी थी। कहते हैं, माँ जब दुख से रोती है, तो धरती भी हिल जाती है, पर थोड़ी देर बाद ही मुँह में आँचल ठूंसकर उसे अपनी सिसकी घोट देनी पड़ी थी। पति ने उसे समझाया था, अस्पताल में रोना सख्त मना है।

"जनक चला गया है गोदावरी," पति ने बच्चे की लाश को दोनों हाथों से पागलों की भाँति समेटते हुए कहा था।

सिसकते-कराहते वह लोग बाहर लॉन में आ बैठे थे। वह ठगी-सी सिर पीट रही थी। दुख जब आदमी पर पड़ता है तो सहसा विश्वास नहीं होता, पर ज्यूं-ज्यूं क्षण बीतते जाते हैं, सत्य को स्वीकारना पड़ता है। अभी कल ही तो जब जनक को लेकर वह लोग शहर आये थे, तो वह बोला था, "बाबा, लौटते में लश्कर से नयी बुशर्ट ले देना।" उसे जीना है, वह जीयेगा, इसका उसे कितना विश्वास था। कोई सोच भी नहीं सकता था कि हँसती-खेलती एक नन्ही-सी जिन्दगी दीये की तरह अचानक धप्प-से बुझ जायेगी!

"बाबा, मैं बड़ा हो जाऊँगा, तो भैंस खरीदूंगा, खूब दूध पीऊँगा और बड़ा आदमी बनूंगा," अपने बाबा की गोद में लेटा-लेटा वह आसमान से चाँद निहारा करता था। उसकी नन्ही-नन्हीं, भोली-भोली बातों से सार···
निहाल हो जाता था।

लगातार एक के बाद एक चार लड़कियों के जन्म के बाद जनक ने जन्म लिया था। उसके जन्म से कितनी प्रसन्नता हुई थी सबको। हमेशा पैर की ठोकर देकर बात करनेवाली सास ने भी पहली बार अच्छे से बोला था। अपने हाथों से असली घी में हलीरा बनाकर खिलाया था। लड़के के जन्म से उसे लगा था, उसके सारे कष्ट समाप्त हो गये हैं, वरना उठते-बैठते सास उसे कोसती रहती थी—उसके बेटे का धन समाप्त करने, खून चूसने कुलच्छनी आयी है।

चौथी बेटी के सौर के समय तो जब दाई ने देहरी के बाहर झाँककर कहा था, "कन्या जन्मी है," तब उसने चिरे हुए फाटक से सास का मुँह देखा था, उसके बाद फिर सास की शक्ल नहीं देखी थी। उसे घी, हलीरा कुछ नहीं दिया गया था। वह खाट पर पड़ी-पड़ी किस्मत को कोसती, रोती रहती थी। जब तीसरी छोरी हुई थी, तब सास दो दिन तक आँचल के छोर में तम्बाकू बाँधे घूमती रही थी कि मौका लगते ही नवजात बच्ची के तालू में तम्बाकू रख देगी, तम्बाकू रखते ही एक घण्टे में बच्ची के प्राण निकल जाते। दाई ने उसे संकेत दे दिया था और वह अपनी बच्ची को छाती से चिपकाये, निगरानी करती रही थी। एक क्षण भी अपने से अलग नहीं किया, चौकसी में वह सारी-सारी रात बच्ची को गोद में लिये बैठी रहती थी।

बाद में हारकर सास ने अपना इरादा बदल दिया, पर उसका क्रोध गालियों में, कोसने में निकलने लगा। चूल्हे में जलती कोलती तक से वह लड़कियों को मार बैठती थी।

ऐसी दुखों से भरी काली रात के बाद सुख की भोर हुई थी। सारे घर में हलचल थी, खुशियों का वातावरण था, ससुर ने बन्दूक उठाकर हवा में चलायी थी, सारे गाँव को सूचना दी थी कि उनके घर वारिस पैदा हो गया है। खुशी के मारे खुद उसकी आँख से आँसू बहने लगे थे। इत्ते-इत्ते ढेर दुख देखने के बाद, लड़कियों की माँ बनकर लानतें सहने के बाद आज उसे बेटे की माँ बनने का मौका मिला था। उसके कमरे के बाहर रात-भर गाँव की औरतों ने ढोलक बजा-बजाकर बधाई गायी थी। खुद सास अपनी शादी का ओढ़ना पहनकर नाची थी, जिसे देखने सारा गाँव जुट गया था। बूढ़े पैरों में यौवन की थिरकन भर गयी थी। ससुर ने बिरादरी की पाँत बुलायी

फिर मोटी गाली देकर चुप हो लेता है, "कुतिया पीकर सुध खो देती है।" फिर कोई आहट नहीं होती, वह भी चुप लेटी रहती है। कोठरी में ज्वार की रोटी की गन्ध भी भर गयी। रात बची रोटी उसने छीके पर रख दी थी, पत्ते से ढककर।

मूंगा छोटी थी तभी माँ मर गयी थी। बाबा रिक्शा चलाता था। जब से माँ मरी थी उसने रात को घर आना छोड़ दिया था। तीनों बहनें भूख से व्याकुल गठरी बनी कोने मे दुबकी बैठी रहती थी। दादा दहलीज झाँक लेता, "बेटी, कुछ खाना नही ?"

"नहीं है बाबा," दीदी बोलती और खाने की बात पर मूंगा को भूख लगने लगती और वह जोर-जोर से रोने लगती।

"चुप कर, नहीं तो इमलीवाली चुड़ैल को दे दूंगी," दीदी धमकाती तो वह सहमकर चुप हो जाती।

माँ थी तब बाबा पैसा देता था। नही भी देता तो माँ कमाकर ले आती थी। माँ जब लौटती तो वे तीनो दरवाजे के बाहर कच्ची भूमि पर बैठी एकटक रास्ते को निहारती रहती थी। थोड़ी भी माँ की साड़ी दिखती और वह चहक उठती, "देख, माँ आ रही है।" माँ के आने का इन्तजार उतना नही रहता था जितना इस बात का कि वह साथ मे जोंधरा-लाई लायेगी। माँ जब मरी तो घर पर कुत्ते रोने लगे। एक दिन रात को बाबा का झनझनाता रिक्शा आया था।

"बाबा आया रे !" दीदी दहलीज पर निकल आयी थी और उसके पीछे वह दोनो भी निकल आयी थी। बूढ़ा दादा झोल-वायी खाट से उठता उत्सुकता से बाहर देखता रहा था। बाबा का लौटना अनहोनी-सी बात थी। बाबा माँ के मरने के बाद कहाँ आता था ?

बाड़ी का कपाट एक तरफ फेंकता बाबा भीतर आया था। उसके पीछे कौन है ? हरी साड़ी, महावर और चाँदी की बिछिया पहने एक औरत थी। आते ही वह ओसारे के एक कोने मे बैठ गयी। ताक पर रखे दिये का उजाला उसके मुँह पर पड़ रहा था। तीनों ने एकसाथ—एकटक उसे देखा था। उसकी ठोड़ी पर गोदना था, जो हँसने के साथ सिकुड़ता तथा फैलता था।

"तेरी माँ है," बाबा ने उसकी तरफ इशारा कर बीड़ी की मोजी तमाखू

को मुँह में फाँकते हुए दीदी से कहा।

उस अँधेरे कोने में तीनों एक-दूसरे से और चिपक गयीं।

"कहाँ की लड़की है रे," बूढ़ा दादा दरवाजे तक घिसटता हुआ आकर प्रसन्नता से बोला।

"सुखदेव नाकेदार की लड़की है," बाबा बोला, "उमरगाँव की है।"

"पहले ब्याह हुआ था?" बूढ़ा दादा उस नये मेहमान के पास बैठता हुआ बोला।

"हाँ, हुआ था। इसका मर्द इसे छोड़कर भाग गया," बाबा ने पिच्च-से थूकते हुए कहा, जैसे उस मर्द के नाम पर थूका हो।

जब से वह आयी थी, एक शब्द नहीं बोली थी। बस, टुकुर-टुकुर सबको घूरे जा रही थी। बाबा उसे अपनी कोठरी में ले गया था जिसमें माँ रहती थी। रात को दीदी दोनों को अपने से चिपकाकर बोली, "खबरदार, उसे माँ नहीं कहना, मौसी कहना···मौसी, समझी?"

मूंगा के अपना कोई भाई नहीं था। मूंगा के बाद हुआ था, पर चार-पाँच दिन रहकर मर गया जिसे बाबा ने बाड़ी के भीतर चमेली झाड़ के नीचे गड्डा खोदकर गाड़ दिया और मिट्टी बराबर कर दी। लगता ही नहीं इस चमेली के पेड़ के नीचे किसी बच्चे को गाड़ा गया होगा। साल-डेढ़ साल तक के बच्चे को बाड़ी के अन्दर पेड़ की छाँव में ही गाड़ देते हैं। बड़े बच्चे की लाश घर से बाहर निकालते हैं। मूंगा कितने दिन तक रात को दहलीज के बाहर पैर निकालते डरती थी, क्योंकि गड्ढा खोदने से लेकर बच्चे को भीतर सुलाने तक और मिट्टी ढाँपने की सारी क्रिया वह अपनी आँखों देखती रही थी। बाद में धीरे-धीरे डर कम हुआ और अब···अब तो वह चमेली के पेड़ के नीचे बल्ला खेलती थी। खुद वह और घर के लोग इस बात को भूल चुके थे कि यहाँ बच्चे को गाड़ा गया है।

नयी पटरी डली थी। रेल आ रही थी। सरकार मजदूरों को बड़ी अच्छी मजदूरी दे रही थी। बाहर से भी बहुत सारे कुली आये थे। दीदी भी काम पर जाने लगी थी। रेल देखने की सबको खुशी थी। गाँव-गाँव खबर फैल

चुकी थी और एक दिन रेल धड़धड़ाती आयी, पर इसी तो दीदी को भी ले गयी।

मौसी के अपना कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ। धीरे-धीरे माँ के कमरे से लेकर घर के कोने-कोने पर मौसी का राज हो गया। बाड़ी में लगी एक-एक मिर्च का मौसी हिसाब रखती थी। कभी भात खाने के समय दीदी मिर्च तोड़ लेती तो वह चोरी तुरन्त पकड़ ली जाती। झट मौसी सामने आ खड़ी होती।

"क्यों री, बाड़ी से मिर्च कौन तोड़ा ?"

सब चुप, जैसे साँप सूँघ गया हो। दीदी जंगली बेल की तरह बढ़ रही थी। उसके हाथ-पैर लम्बे निकल रहे थे।

एक दिन दीदी घर लौटी, ढेर सारा सेव-चूड़ा लिये। दोनों के हाथ पर धरकर बोली, "मैं जा रही हूँ, मैंने मरद बना लिया है, खबरदार किसी से कहना नहीं, ढूँढने दे उन लोगों को," कहती दीदी बाड़ी का दरवाजा वापस सुतली से कसती चली गयी। कच्चे कुएँ की बल्ली पर दोनो बहनें बैठी मुटुर-मुटुर जाती दीदी को निहारती रह गयी थी।

दीदी रेलवे में काम करनेवाले मजदूर के साथ भाग गयी थी। कहाँ गयी, किसी को नहीं मालूम। न दीदी की किसी ने खबर ली और न दीदी ने अपनी खबर दी। हिसाब दोनों तरफ से बराबर रहा। हाँ, जिस दिन दीदी भागी थी, रात तक सबने रास्ता देखा था। बूढ़ा दादा दो बार दहलीज झाँककर पूछ गया था, "ब्रेसती नहीं आयी।"

उत्तर कौन देता ? किसी के पास उत्तर नहीं मिलता देख वह खुद खिसियाकर चुप हो गया था। रात बाबा ने मौसी की रखी शराब को पेट में उँड़ेल लिया था और बिना खाये बकता-बकता सो गया था।

हाँ, मौसी दो बार अपना किवाड़ खोलकर कोठरी में दीया लिये दीदी को देखने आयी थी।

कुम्हड़े की बेल कूद-फाँदकर छत पर चढ़ गयी थी। उसी के पास मुँदरू झीरा मँडवा पर छा गया था, जिस पर सफेद-सफेद फूल खिलने लगे थे।

को मुँह में फांकते हुए दीदी से कहा।

उस अँधेरे कोने में तीनों एक-दूसरे से और चिपक गयीं।

"कहाँ की लड़की है रे," बूढ़ा दादा दरवाजे तक घिसटता हुआ आकर प्रसन्नता से वोला।

"सुखदेव नाकेदार की लड़की है," वावा वोला, "उमरगाँव की है।"

"पहले व्याह हुआ था ?" बूढ़ा दादा उस नये मेहमान के पास बैठता हुआ वोला।

"हाँ, हुआ था। इसका मर्द इसे छोड़कर भाग गया," वावा ने पिच्च-से थूकते हुए कहा, जैसे उस मर्द के नाम पर थूका हो।

जव से वह आयी थी, एक शब्द नहीं वोली थी। वस, टुकुर-टुकुर सवको घूरे जा रही थी। वावा उसे अपनी कोठरी में ले गया था जिसमें माँ रहती थी। रात को दीदी दोनों को अपने से चिपकाकर वोली, "खवरदार, उसे माँ नहीं कहना, मौसी कहना···मौसी, समझी ?"

मूंगा के अपना कोई भाई नहीं था। मूंगा के वाद हुआ था, पर चार-पाँच दिन रहकर मर गया जिसे वावा ने वाड़ी के भीतर चमेली झाड़ के नीचे गड्ढा खोदकर गाड़ दिया और मिट्टी वरावर कर दी। लगता ही नहीं इस चमेली के पेड़ के नीचे किसी वच्चे को गाड़ा गया होगा। साल-डेढ़ साल तक के वच्चे को वाड़ी के अन्दर पेड़ की छाँव में ही गाड़ देते हैं। वड़े वच्चे की लाश घर से वाहर निकालते हैं। मूंगा कितने दिन तक रात को दहलीज के वाहर पैर निकालते डरती थी, क्योंकि गड्ढा खोदने से लेकर वच्चे को भीतर सुलाने तक और मिट्टी ढाँपने की सारी क्रिया वह अपनी आँखों देखती रही थी। वाद में धीरे-धीरे डर कम हुआ और अव···अव तो वह चमेली के पेड़ के नीचे वल्ला खेलती थी। खुद वह और घर के लोग इस वात को भूल चुके थे कि यहाँ वच्चे को गाड़ा गया है।

नयी पटरी डली थी। रेल आ रही थी। सरकार मजदूरों को वड़ी अच्छी मजदूरी दे रही थी। वाहर से भी वहुत सारे कुली आये थे। दीदी भी काम पर जाने लगी थी। रेल देखने की सवको खुशी थी। गाँव-गाँव खवर फैल

चुकी थी और एक दिन रेल घड़घड़ाती आयी, पर गयी तो दीदी को भी ले गयी।

मौसी के अपना कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ। धीरे-धीरे माँ के कमरे से लेकर घर के कोने-कोने पर मौसी का राज हो गया। बाड़ी में लगी एक-एक मिर्च का मौसी हिसाब रखती थी। कभी भात खाने के समय दीदी मिर्च तोड़ लेती तो वह चोरी तुरन्त पकड़ ली जाती। झट मौसी सामने आ खड़ी होती।

"क्यों री, बाड़ी से मिर्च कौन तोड़ा?"

सब चुप, जैसे साँप सूँघ गया हो। दीदी जंगली बेल की तरह बढ़ रही थी। उसके हाथ-पैर लम्बे निकल रहे थे।

एक दिन दीदी घर लौटी, ढेर सारा सेव-चूड़ा लिये। दोनों के हाथ पर धरकर बोली, "मैं जा रही हूँ, मैंने मरद बना लिया है, खबरदार किसी से कहना नहीं, ढूँढने दे उन लोगों को," कहती दीदी बाड़ी का दरवाजा वापस सुतली से कसती चली गयी। कच्चे कुएँ की बल्ली पर दोनों बहनें बैठी मुटुर-मुटुर जाती दीदी को निहारती रह गयी थीं।

दीदी रेलवे में काम करनेवाले मजदूर के साथ भाग गयी थी। कहाँ गयी, किसी को नहीं मालूम। न दीदी की किसी ने खबर ली और न दीदी ने अपनी खबर दी। हिसाब दोनों तरफ से बराबर रहा। हाँ, जिस दिन दीदी भागी थी, रात तक सबने रास्ता देखा था। बूढ़ा दादा दो बार दहलीज झाँककर पूछ गया था, "बेलती नहीं आयी।"

उत्तर कौन देता? किसी के पास उत्तर नहीं मिलता देख वह खुद खिसियाकर चुप हो गया था। रात बाबा ने मौसी की रखी दाराब को पेट में उँडेल लिया था और बिना खाये बकता-बकता सो गया था।

हाँ, मौसी दो बार अपना किवाड़ खोलकर कोठरी में दीया लिये दीदी को देखने आयी थी।

कुम्हड़े की बेल कूद-फाँदकर छत पर चढ़ गयी थी। उसी के पास कुँदरू हीरा मँडवा पर छा गया था, जिस पर सफेद-सफेद फूल खिलने लगे थे।

बूढ़ा दादा जब जवान था तब इस बाड़ी में सागौन के पाँच पेड़ लगाये थे। दादा बुढ़ा गया, बाबा भी बुढ़ा गया, पर सागौन के पेड़ अभी तक नाबालिग ही थे। बाबा कहता है, "यह पेड़ बढ़ जायेंगे तब खूब पैसा आयेगा। तब इस घर को ईंट का बनायेगा।" पर बाबा के मरने के बाद कौन बनायेगा? बस, इसी बात से बाबा शराब पीकर दुखी हो जाता। जब भी बाबा शराब पीता, उसे मरे हुए बेटे का दुख सताता। वह जलती-कोलती लेकर तीनों के पीछे दौड़ता, "चले जाओ मेरे घर से, मेरा धन खाने के लिए जन्मे हो।"

मौसी तीनों को मुर्गी की तरह कोठरी में ढाँप देती और कपाट के आगे खड़ी हो जाती। तब बाबा फुग्गा फाड़कर रोने लगता। मौसी चिल्ला-चिल्लाकर लड़ती, "मैं कहूँ तुझसे नशा सँभलता नहीं तो पीता क्यों है? तुझसे अच्छा नशा तो औरत सँभाल लेती है, काहे का मरद बनता है?"

खुद मौसी जात से औरत थी पर उसका गुर्दा मरद का था। नशा भी खूब सँभाल लेती थी और घर-आये पटवारी काका, तूसा सेठ, लकमू दरजी के साथ बैठकर बीड़ी भी पी लेती थी। घर पर जितने भी लोग आते, सब मौसी को ही पूछते, बाबा को कोई नहीं पूछता था। सब जानते-बूझते हुए भी बाबा मौसी से कुछ नहीं कहते थे। बाबा मौसी से बहुत डरते भी थे। अक्सर तूसा सेठ आता और ओसारे में रखी खाट पर बैठकर भीतर झाँकने की कोशिश करता तो झट मौसी उसकी पीठ पर धौल जमा देती, "सेठ, बात इमली की करने आया है और महुए की गन्ध लेता है। खबरदार! मेरे घर लड़कियाँ हैं, उधर आँख उठाकर देखा भी तो तेरा भुरता बना दूँगी, समझा? फूट यहाँ से।" और मौसी घृणा से वहीं थूक देती थी।

उतरती साँझ को घर पर चहल-पहल थी। पता चला, लड़की देखने-वाले आये हैं। बाबा शायद दीदी के कारण डर गया था, इसलिए वह अपने सामने लड़की को दे देना चाहता था। मूँगा चुपचाप कोठरी में चली गयी।

मौसी उसे खोजती भीतर तक आयी, "मूँगा, मुँह-हाथ धोकर, ले यह साड़ी पहन ले!" मौसी ने उसके हाथ में अपनी साड़ी थमा दी।

पीछे बाड़ी से वह जब साड़ी बदलकर लौटी तो देखा, बाबा शराब पीकर

थी और खुद सिर पर साफा बांधकर, छाती तानकर, हुक्का गुड़गुड़ाते हुए सबसे बधाई स्वीकारी थी। हमेशा बेटे की माँ बनी रहने पर गर्व करनेवाली सास पहली बार बेटी के लिए रोयी थी, "मेरी बेटी होती तो उसे भतीजे को काजल लगाई में इतना देती कि उसका घर भर जाता, पर मेरे भाग्य खोटे, दो बेटे ही बेटे हुए।"

सास ने हर नेग-दस्तूर बड़े मन से किये थे। दिन हफ्तों में, फिर महीनों मे, फिर साल में बदल गये और नन्हा जनक सात साल का हो गया। जनक सात बरस का था और सात जगह से उसकी ब्याह की बात आ गयी थी। ससुर ने मूँछों पर ताव देकर बात लौटा दी थी, "भर नौ का होगा मोड़ा तब बात लेंगे!" पर किसे पता था, होनी नाग बनकर डसने बैठी है। जनक को अचानक बुखार आया, गांव के लोगो ने कहा, इस साल आम में ज्यादा बौर आया है, इसी से बच्चो को बुखार आया है। पर धीरे-धीरे बुखार बढ़ता गया। सरकारी अस्पताल के डाक्टर ने देखा तो कहा, पीलिया हो गया है। दवा-दारू, झाड-फूंक सब करवाये, पर बुखार नहीं उतरा। आखिर डाक्टर ने हाथ टेक दिये—ग्वालियर के बड़े अस्पताल ले जाओ। और फिर आखिर बस में बैठकर शहर की ओर वह लोग चल पड़े थे।

"गोदावरी, क्या सोच रही है? अब क्या करें? बच्चे का क्रिया-करम करना पड़ेगा। मैं सुबह से चक्कर काट आया, कोई भी टैक्सीवाला लाश ले जाने को तैयार नहीं है, और जो तैयार होता है, वह पूरे पाँच सौ मांगता है।" पति ने हताश होकर उसे बताया।

"नहीं, मेरे बेटे को गाँव ले चलो, सबको उसका मुँह दिखा दो, यहाँ परदेश में किसके सहारे करोगे मेरे बेटे को? क्या परदेश की मिट्टी ही मेरे बेटे के नसीब में है?"

"हूँ, आखिर माँ-बाप भी तो देख लें बेटे का मुँह।" कहकर पति चुप घुटने मोड़कर उदास बैठ गये।

अस्पताल की हलचल वैसी ही थी। लड़कियाँ रोते-रोते निढाल पड़ी-पड़ी ऊँघ रही थी। गोदावरी गोद में जनक को लिये मक्खियाँ आँचल से

भगाती बैठी थी, आँसू थे कि रुकना ही नहीं चाहते थे और मन था जो जनक को मरा हुआ स्वीकारना नहीं चाहता था।

"सुन," अचानक पति ने उसके कन्धे झकझोरे, "एक काम हो सकता है, इसे बस में ले चलते हैं, पर तू उसे जीवित बच्चे की तरह गोद में समेटे रहना, रास्ते-भर रोना-धोना नहीं और रास्ते-भर आँचल ढाँककर इसे दूध पिलाती रहना, जरा भी शक न होने देना, क्योंकि बस में जिन्दा आदमी जाते हैं, मरे हुए नहीं। थोड़ा भी शक हुआ, तो हम सब जेल की हवा खायेंगे।"

"आँ, क्या कहते हो," उसने जोर से सिसकी भरी, "जनक को दूध पिलाऊँ ? मोड़ा तो रूठ गया, मेरी छाती पत्थर कर गया।"

"शान्त हो जा गोदावरी, अकल से काम ले, इस तरह जनक को लेकर गाँव जा सकेंगे क्या ? सोच ले, बिना जनक के लौटना पड़ेगा, और ज्यों-ज्यों देर होगी, समस्या और विकट हो जायेगी। अभी ताजी-ताजी बात है, मेरी बात मान ले।"

गोदावरी बेवकूफ-सी गूँगी बनी पति को निहारती रही, उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। अभी कल ही की तो बात है, जनक को हँसाते-खिलाते, बस की खिड़की से बन्दर, मन्दिर दिखाते वह लोग बस से लाये थे, और आज क्या हो गया, जो छिपाकर चोरी से ले जाने की बात होने लगी ? उसका बेटा जनक अब जनक नहीं रहा ?

"चल, चल गोदावरी, जनक को लेकर उठ !" पति ने उसे कन्धे से उठाकर खड़ा किया। लड़कियों ने बाकी सामान पकड़ लिया। पति उसे सहारा देकर ले जाने लगा। गोदावरी छाती से चिपकाये अपने छौने को ले चलने लगी, उसे धूप न लगे, सो उसने उसे आँचल से ढाँक लिया था। चलते-चलते जनक का पैर हिलता-डुलता तो उसे लगता कि दुनिया झूठ बोलती है, बच्चा जिन्दा है और उसकी छाती में मुँह गाड़े जनक शान्त नींद सो रहा है, थका-सा। लम्बी बीमारी ने उसे कितना कमजोर कर दिया है।

बसस्टैण्ड आते ही पति उससे हटकर चलने लगा, साथ ही हिदायत देने लगा, "देख, सारे रास्ते रोना मत, गोदावरी, मन को पत्थर कर ले। जनक को गाँव ले जाना है।"

और गोदावरी ने कलेजा पत्थर कर लिया। ममता की चीखों को, रुदन को उसने दाँतों से भींचकर भीतर रोक लिया। नहीं, वह नहीं रोयेगी। उसे अपने बेटे को अपने उधर ले जाना है, वह घर जायेगा। वह माँ है, और माँ होकर बच्चे को परदेश में अजनबियों के हाथ सौंप जायेगी?

वह लोग बस में बैठ गये। वह पत्थर की मूर्ति बनी बैठी रही। कण्डक्टर दो बार आया, "अजी गोद के बच्चे का भी टिकट लगेगा, दिखाओ कितने वर्ष का है।"

"सो रहा है बाबू, टिकट तुम ले लो, सात वर्ष का छोरा है," पति ने फँसे गले से कहा।

"बड़ी गहरी नींद में है, जरा भी शोर से उठ नहीं रहा।" कण्डक्टर ने टिकट पति को थमाते हुए अपनी दरियादिली दिखायी।

"हाँ बाबू, बड़ी···गहरी नींद में है," कहते पति के गले से जोर से सिसकी उठी पर फिर गले में घुटकर रह गयी।

सारे रास्ते वह चुप बनी बैठी रही। बच्चे को छाती से चिपकाये वह फटी-फटी आँखों से सामने बिछी डामर की सड़क को निहारती रही। गाँव-पर-गाँव आते रहे, लोग उतरते-चढ़ते रहे। सारे लोग उतरकर नाश्ता-पानी करते रहे, पर वह लोग तो दूसरी दुनिया के वासी थे, कभी भूख-प्यास लगती ही नहीं हो, ठठ बने बैठे रहे।

"अजी बच्चों का मुँह सूख रहा होगा, पानी-वानी तो पिला दो!" एक यात्री ने हमदर्दी दिखायी।

"नहीं हुजूर, गरीब के बच्चे हैं, इन्हें भूख-प्यास नहीं लगती।"

बस फिर चल पड़ी। यात्रा इतनी कठिन हो सकती है, यह वह कभी सोच भी नहीं सकते थे।

जब बस उनके गाँव में पीपल के पास रुकी तो उसका कलेजा मुँह को आने लगा। बच्चे के भार से उसकी बाँह मारी हो गयी थी। भीड़ के पीछे-पीछे वह भी उतरने लगी। पति लड़कियों को बाँह पकड़-पकड़कर उतारने लगा। पति ने उसे उतारने के लिए उसकी गोद से जनक को लिया। जनक को पति की बाँहों में देते हुए उसे लगा कि वह एकदम हलकी-सी, तिनके-सी हो गयी है। जैसे उसका अपना कोई वजन ही नहीं हो। सारा भार तो

जनक का था और पहली बार उसे लगा कि उसकी गोद सूनी हो गयी है। दुख से उसकी छाती फटने लगी, वह एकदम नीचे उतरकर रोने लगी, उसके साथ पति, बच्चियां सब रोने लगे। बस के तथा आसपास के सारे आदमी चकित रह गये और आश्चर्य से उन्हें देखते रह गये। किसी की कुछ समझ में नहीं आया। पति जनक की लाश को दोनों बांहों में सँभाले आगे चलने लगा। और उसे लगा कि बेटे को अपनी जमीन देने के सुख से वह निश्चिन्त और हल्की हो उठी है।

पत्थरवाली गली

वह और शाईस्ता दौड़ती हुई घर के दालान में एक-दूसरे पर गिर पड़ी। दोनों की साँस धौंकनी की तरह तेज-तेज चल रही थी। अपनी गली में आकर कुत्ता भी शेर हो जाता है न! बस, उसी तरह वे दोनों भी अपने घर पहुँचकर अपने-आपको सुरक्षित-सा महसूस कर रही थी। अभी भी वे सहमी-सहमी-सी पत्थरवाली गली की ओर निहार लेती थी, जैसे चुड़ैल यहाँ तक न आ पहुँची हो। पर नहीं, चुड़ैल की इतनी हिम्मत कहाँ जो यहाँ तक आ पहुँचे! दालान में टूटी चूड़ियों का ढेर इधर-उधर पड़ा था। हरी, पीली, नीली, लाल चूड़ियों के टुकड़े सारे दालान में बिखरे थे। लगता था—अभी-अभी खाला ने अपनी दुकान समेटी है।

"जेबा, कहाँ गयी थी तुम दोनों?" खाला ने फट-से दरवाजा खोला, और बाहर दालान में आती हुई बोलीं, "तुझसे कितनी दफा कहा है, आज-कल बाहर मत जाया कर, रमजान के दिन हैं, कोई-न-कोई गाहक आ जाता है। मैं दुकान देखूँ कि घर? तेरे दादा का रहना, न रहना तो बराबर ही है।"

"बस, थोड़ा यूँ ही···।" उसने घबरायी हुई आवाज पर काबू पाते हुए कहा।

"अरे, अल्लाह खैर करे," खाला ने इस बार मतर्कता से दोनों को घूरा, "तुम दोनो इस तरह सहमी क्यों हो?" खाला ने वही दालान में रखे

मोढ़े पर बैठते हुए पूछा। उनके हाथ में पतली-सी छड़ी थी, शायद वह बकरियाँ बाँधते-बाँधते इधर आ गयी थीं। उसे लगा कहीं खाला छड़ी से पिटाई न कर दें! खाला का कुछ ठीक नहीं, गुस्से में होती हैं तो जो हाथ में होता है उसी से मार बैठती हैं।

"खाला, हम दोनों छोटे टोले पर चूड़ियाँ पहुँचाने गयीं तो यह बोली, चल, तेन्दू बीनकर ले आयें," उसने अपने गुनाह को शाईस्ता पर डालते हुए सफाई से बयान दिया, "बस, मैं इसके साथ चली गयी। हम दोनों तेन्दू चुनते-चुनते बीच जंगल में पहुँच गयीं। बातों में पता ही नहीं चला। अचानक मैंने सिर उठाया तो देखा पेड़ पर लाल रंग की नयी साड़ी लटक रही थी। बस, हम दोनों डरकर पीली पड़ गयीं। भागते-भागते यहाँ पहुँची हैं तो जान-में-जान आयी है। तुमने ही तो बताया था न, कि बीच जंगल में पेटवाली औरत को गाड़ते हैं और निशानी के लिए पेड़ पर नयी साड़ी टाँग देते हैं, ताकि सबको पता रहे और कोई भटका मुसाफिर भी वहाँ सुस्ताने न बैठे।"

"उफ् अल्ला!" खाला ने अपनी सहमी साँस को बाहर किया, "अरे कम्बख्त, भरे जंगल में मत जाया करो। वहाँ पेटवाली औरतों को या जच्चा को गाड़ते हैं गाँववाले, नहीं तो जागकर वह गाँववालों को तंग करती हैं। देखा नहीं था नाकेदार की बहू जचकी में मरी थी, उसे ले जाकर तरिया ऊपर गाड़ दिये। वह दो दिन में ही जाग गयी और गाँव में आकर अपना बच्चा ढूँढ़ती थी। इसीलिए तो दूर जंगल में गाड़ते हैं।"

"हाँ खाला, नाकेदार की बहू को गाँववाले भैंसा-गाड़ी में डालकर ले गये थे न?" शाईस्ता बोली।

"हाँ," खाला ने पान की पीक को दालान के बाहर फेंकते हुए कहा, "गाँववाले जचकी में मरनेवाली औरत को भैंसा-गाड़ी में ही डालकर ले जाते हैं, नहीं तो कहते हैं वह पलटकर आ जाती है और भैंसा-गाड़ी में ले जाने से नहीं आती। जब मुझे बाजार के दिन गाँव से लौटने में देर हो जाती है तब गाँववाले बेचारे भैंसा-गाड़ी में बिठाकर जंगल पार करा देते हैं। रात ज्यादा हो जाये तो जंगल का रास्ता भैंसा-गाड़ी में बैठकर ही पार करना चाहिए तो कहते हैं, इससे कोई भटकी हुई रूह पीछा नहीं करती,

रास्ता नहीं रोकती। नहीं तो रास्ते में आकर खड़ी हो जाती है।"

"उस दिन देखो न, पटेल के लड़के की शादी थी, मैं चूड़ियाँ पहनाने उसके गाँव गयी थी," खाला आगे बोली, "पटेल ने जबर्दस्ती रोक लिया, रात को नेग-दस्तूर देखकर जाओ। नेग-दस्तूर होते-होते काफी रात हो गयी थी और लौटते में घना जंगल पड़ता था। डोंगरी के किनारे-किनारे रास्ता था, जहाँ बेंत का जंगल है। पटेल ने मुझे भैंसा-गाड़ी में पहुँचाया। सारे रास्ते मैं डरकर बैठी थी। बेंत के जंगल में ज़रा भी हवा चलती और साँय-साँय की आवाज होती तो बस मुझे लगता कोई औरत उठकर पीछा कर रही है। जब जंगल पार हुआ तब जान-मे-जान आयी। इसलिए तुम लोगों से कहती हूँ, ज्यादा मारे-मारे मत फिरा करो, इधर-उधर, समझी!"

तभी सामने से दादा लाठी टेक-टेककर आते दिखे। वह शायद मस्जिद में नमाज पढ़कर लौट रहे थे। उनके आगे-आगे गली का कुत्ता चल रहा था, जिसे वह अपनी लाठी से खेद रहे थे, पर वह कुत्ता भी एक ढीठ था, जाता ही नहीं था। उसकी यह आदत रोज की बन गयी थी, वह रोज दादा के साथ लौटता था। दादा उसे रोज टुकने में से बासी रोटी का टुकड़ा निकालकर देते थे, बस उसी के लालच में वह आता था। खाला रोज बड़बड़ाती थी, पर दादा उसे बिना नागा रोटी का टुकड़ा डाल देते थे।

"चल, मैं खाना बना रही हूँ, कोई गाहक आ जाये तो तू चूड़ियाँ पहना देना," खाला उसे ड्यूटी पर तैनात करती अन्दर चली गयी। उनके जाते ही तम्बाकू की वह सोंधी गन्ध भी चली गयी थी जो उनके मुँह से, बटुए से निकलकर सारे दालान में भर गयी थी।

शाईस्ता उठकर जाने लगी और उसने ओढ़नी से सिर को अच्छे से ढका, शाईस्ता को विदा दी और चूड़ियों के तोड़े लाने अन्दर चली गयी। सलवार के नेफे में खोंसे पाँच रुपये निकालकर उसने खाला की पैसे रखने की पुरानी जंग-खायी छोटी-सी सन्दूकची में डाल दिये। सन्दूकची में तीन अठन्नियाँ, चार चवन्नियाँ और कुछ चिल्लर पड़े थे। पाँच का नोट रखकर उसने दस का एक सिक्का उठा लिया और चुपचाप अपनी कमीज की जेब में रख लिया। इस छोटी-मोटी चोरी को वह अपनी मेहनत समझती थी।

खाला को भी पता रहता, पर वह भी अनदेखा कर देती थीं, क्योंकि उसके विना उनका काम भी नहीं चल पाता था। खाला को अव उसकी तरफ से पूरा इत्मीनान हो गया था। अव खाला के वाहर के ग्राहकों को वह सँभाल लेती थी। हाथ चाहे कड़े हों, चाहे मुलायम, अव वह वड़े आराम से हाथों को पेचदार घुमा-घुमाकर चूड़ियाँ पहना देती थी। उससे चूड़ियाँ भी कम तड़कती थीं। खाला तो अव कहने लगी थीं, थोड़े दिनों में पूरे दुकान का भार उस पर डालकर मुसल्ला विछाकर अल्लाह को याद किया करेंगी।

शाईस्ता भी अव अपने वाप की दुकान पर वैठने लगी थी। पीर साहव की दरगाह के नीचे उतरनेवाली सीढ़ी पर ही उसके वाप की इलायचीदाने और चढ़ावे की चादर की दुकान थी। मुँहअँधेरे जव दरगाह खुलती, तव शाईस्ता टुकना लेकर दरगाह में चली जाती और चढ़ाये हुए इलायचीदाने समेटकर ले जाती। उन्हें साफ करती और फिर वह दुकान में नये सिरे से विकने लगता था। जव शाईस्ता पाँच साल की थी, तव से ही उसके अव्वा ने उसे इस काम में लगा दिया था, अव तो वह इस काम में माहिर हो गयी थी। मुँहअँधेरे वह दरगाह में इलायचीदाना समेटने पहुँच जाती थी, तव कोई उठा नहीं रहता था। वस, दरगाह के मुजावर जागते थे। गाँव के लोगों को पता चल जाये तो लोगों की श्रद्धा ही टूट जाये। दुकान में दरगाह के और उसके वावा का आधा-आधा शेयर होता था। रोज वही चादरें चढ़तीं, रात को वही चादरें उतारकर वापस दुकान में पहुँचा दी जातीं। यह सारा काम वहुत सफाई से होता। कोई जानता नहीं था, जो जान भी लेता तो अपनी जुवान वन्द रखता। धर्म के कामों में वोलकर कौन अपने सिर गुनाह लिखाये ?

.

"जेवा वेटी जा, नुक्कड़वाली दुकान से टाइम पूछ आ," दादा दालान पर वैठते थके-से वोले।

"दादा, अभी तो खाला दुकान पर वैठाकर गयी हैं, आयेंगी तो डाँटेंगी," चूड़ियों के तोड़े खोलकर छाँट-छाँटकर छोटी-वड़ी चूड़ियाँ अलग करते हुए वह वोली, "रमजान का आखिरी जुमा है, औरतें चूड़ियाँ पहनने आती-जाती

रहती हैं न !"

"जा, रानी बेटी है न," दादा ने खुशामद-भरे लहजे में कहा, फिर अपनी अचकन से दस का सिक्का निकालकर उसकी तरफ बढ़ाते हुए बोले, "ले, जा, रास्ते में बिस्कुट खा लेना।"

दस का सिक्का देखकर उसने फैली, बिखरी चुड़ियों को जल्दी-जल्दी बांधना शुरू किया और एक बार मुड़कर अन्दर झांका। खाला आस-पास नहीं दिखी। उसने सिर का दुपट्टा ठीक किया और दादा के हाथ से दस का सिक्का ले लिया।

"लाओ, अब इतना कह रहे हो तो पूछकर आती हूं, पर तब तक तुम दुकान पर रहना, कोई गाहक आये तो रोककर रखना।"

"हां, हां, रोककर रखूंगा, पर देख तू टाइम पूछकर सपाटे से आ," दादा ने प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरा, "रानी बेटी है, बात मान लेती है, जा !"

वह नीचे पत्थरवाली गली में उतर गयी। दादा ज्यों-ज्यों बूढ़े होते जा रहे हैं, सठियाते जा रहे हैं। मिलिट्री से रिटायर क्या हुए हैं, जैसे सबकी जान आफत में है। बार-बार समय पूछने भेजते रहते हैं। घड़ी भी बस एक वह नुक्कड़वाली परचून की दुकान पर ही है। परचूनिया उसे देखते ही एक आंख दबाकर बेशर्मी से मसखरी करता है, "रानी के लिए घड़ी शहर से ला दूंगा, फिर रोज-रोज टाइम देखना।"

वह बन्नो आपा की सूनी दहलीज पर थोड़ी देर बैठी उनकी चरती चखर्खी को देखती रही, फिर चुपचाप घर लौट आयी और बड़े ही संजीदा अन्दाज में अपने मन से झूठ-मूठ बोली, "दादा, तीन बज गये···तीन !"

"क्या, तीन बज गये ?" दादा एकदम सतर्क हुए, "वक्त भी कितनी तेजी से चला जाता है !"

"कोई गाहक आया ?" खाला नहाकर आयी थी, उनके हाथ में ढेर-सारे निचोड़े गीले कपड़े थे, जिनको उन्होंने बांस के अहाते पर फैला दिया।

"नहीं खाला, अभी तो कोई नहीं आया," उसने लाल चूड़ियों को निहारा, जिन पर लाल-सुनहरे छींटे थे। ये खास चूड़ियां थीं। इन्हें खाला नयी-नयी ब्याही दुल्हनों को पहनाती थी। एक बार उसने भी जिद पकड़ी

थी पहनने के लिए, तो खाला ने डाँट दिया था, "अभी नहीं, शादी में पहनना, तेरी गोरी-गोरी भरी कलाइयों में खूब खिलेंगी ये लाल चूड़ियाँ !"

शाम को वह शाईस्ता के घर से लौट रही थी। उसके हाथ में लालटेन थी, जो वह ठीक कराने ले गयी थी। शाम बस ढलने को ही थी। वह तेज-तेज कदम बढ़ाती घर की ओर बढ़ने लगी। सामने देखा—दादा लाठी के सहारे गर्म खाकी मिलिट्रीवाला कोट पहनकर जा रहे थे, जिसकी पीतल की बटन आज भी चमकती थी। दादा के इस कोट पर कितनों के हाथों की सिलाई थी—अम्मा, खाला, और खुद उसके अनाड़ी हाथों की। सिर पर मफलर लपेटे वह धीरे-धीरे पैर घसीटते जा रहे थे।

"दादा, अँधेरा होने को है, तुम कहाँ जा रहे हो ?" उसने लपककर उन तक पहुँचते हुए पूछा।

"अरे जेबा, तू कहाँ गयी थी बेटी ? बस जरा नुक्कड़ की दुकान में समय पूछने जा रहा था।"

"फिर वहीं···?" वह चौंकी, "तुम्हें मालूम है न, वह पच्चीसों मर्तबा तुम्हें कुत्ते-सा दुत्कार चुका है, फिर वहीं टाइम पूछने जा रहे हो।"

"क्या करूँ बेटी, समय जानने की बुरी आदत पड़ गयी है, जाती नहीं। और किसी पहचानवाले के पास घड़ी भी तो नहीं।"

"मगर वह दुकानदार तुम्हें देखते ही चिढ़ता है, क्यों जाते हो उसके पास बार-बार ?"

"अच्छा ले, तू कहती है तो नहीं जाता," दादा लाठी को हाथ में रखे वहीं खड़े हो गये, "यहीं खड़ा रहकर किसी दूधवाले का रास्ता देख लेता हूँ, आजकल सब दूधवाले घड़ी बाँधते हैं।"

"तुम चलो तो···" उसने अनुमान से सोचकर समय बताया, "अभी छः बजा होगा।"

"नहीं, तू बहलाती है," दादा हँसे, "समय हमेशा सही बताना और जानना चाहिए।" दादा आँख का कीचड़ साफ करते हुए बोले, "मैं यहीं खड़ा रहता हूँ, तू जा।"

"नहीं, तुम घर चलो, मैं समय पूछकर आती हूँ।"

दादा को उसने वापस भेज दिया। उनकी समय पूछने की इस आदत से मोहल्ले के सारे लोग तंग थे। हर आधे-पौन घण्टे के बाद वह समय पूछने किसी के भी घर पहुँच जाते। कोई यदि गलत समय बताकर टालना चाहता तो तुरन्त समझ जाते और दूसरी जगह टाइम पूछने चले जाते।

दादा नौकरी में थे तो समय की पाबन्दी के लिए मशहूर थे। बड़े-बड़े साहब तक इस बात के लिए दादा की इज्जत करते थे—समय के और बात के पक्के। बड़े साहब शाम के चार बजे सड़क पर से गुजरनेवाले हैं, और दादा की ड्यूटी लगी हुई है, फिर तो सारे लोगों की शामत आ जाती। खुद ग्यारह बजे से डटे हैं और सबको लगा रखा है। बड़े साहब की गाड़ी शाम के चार बजे के बजाय रात के ग्यारह बजे सड़क क्रॉस करती और वह अपनी ड्यूटी पर तैनात रहते। वह धूप में, बारिश में, ठण्ड में, भूखे-प्यासे खड़े रहते और सबको खड़ा रखते। समय की पाबन्दी में ही वह अपने सारे दैनिक काम करते थे। आज भी अगर पता चल जाये कि सात बज गये हैं तो वह चाय नहीं पीते। सब मना-मनाकर थक जाते हैं, पर वह यही कहते हैं, "चाय का टाइम निकल गया।"

नुक्कड़ की दुकानवाला दादा को कई बार झिड़क चुका है। उस दिन तो उसने चिल्लाकर कहा था, "दादा, काहे को टाइम पूछ-पूछकर मगज खाते हो, अभी तुम्हारी मौत में बहुत टाइम है।"

दादा झिड़की खाकर, मुँह लटकाकर लौट आये थे। उस दिन से उसकी दुकान पर नहीं जाते, बस उसी की खुशामद करते हैं, और वह भी उसकी दुकान पर जाने से काफी कतराने लगी है।

एक दिन भर-दोपहर में दादा ने उसे समय पूछने भेजा था। उस दिन दुकानदार दुकान पर न बैठकर भीतर घर में था। उसने भीतर झाँका तो वह दीवार पर गड़े आईने में देख-देखकर बाल सँवार रहा था।

"आओ रानीजी," दुकानदार ने आईने में ही उसे देख लिया था, और बाल सँवारते-सँवारते मुस्कराया था।

"दादा ने पूछा है टाइम कितना हुआ है?" उसने भीतर झाँकते हुए पूछा। दीवार पर बड़ी-बड़ी रंगीन तस्वीरें टँगी थीं, मोहक, आक

पत्थरवाली गली /

महिलाओं की।

"भीतर आकर बैठ, बताता हूँ।" दुकानदार बोला।

वह रंगीन तस्वीरें देखती मुग्ध-भाव से भीतर कोठरी में चली गयी थी। दुकानदार मौके की तलाश में था ही, उसने लपककर दरवाजे की कुण्डी चढ़ा दी और उसे पकड़ लिया। उसने भयभीत होकर दुकानदार को देखा और घबराई-सी छटपटाती दौड़ने लगी, छीनाझपटी में उसकी सारी चूड़ियाँ भी टूट गयीं। आखिर वह दरवाजे की कुण्डी खोलने में सफल हो गयी और भाग खड़ी हुई।

उस दिन के बाद उसने उसके घर का रुख नहीं किया। उसने यह बात दादा और खाला से छुपा ली, क्योंकि सुनते ही दादा लड़ने के लिए दुकानदार के पास पहुँच जाते और दुकानदार उनके बुढ़ापे का खूब मजाक उड़ाता। उस दिन से दादा टाइम पूछने भेजते तो वह आधे रास्ते से ही लौट आती और अन्दाज से जो मन में आता समय बता देती। दादा को भी तसल्ली हो जाती और वह निश्चिन्त होकर दूसरे काम में लग जाते।

पत्थरवाली गली। वह भी दादा की ही तरह पुरानी थी, जिसमें बड़े-बड़े, गोल-गोल पत्थर थे। पता नहीं ये पत्थर यहाँ कौन बिछा गया था। उन पर ठीक-से चलते भी नहीं बनता था, पैर में चुभ-चुभ जाते थे। बैलगाड़ी भी बड़ी मुश्किल से निकलकर आती थी। दादा कहते हैं, उनकी नानी के जमाने में यहाँ नदी का घाट था। नदी का बहाव भी इधर ही था। फिर पता नहीं कैसे नदी ने अपने-आप अपना रुख मोड़ लिया। सबसे पहले यहाँ एक साधु ने कुटिया डाली थी, उसके पास एक कुत्ता था। कई वर्ष के बाद साधु चला गया। कुत्ता वहीं छूट गया। फिर कुछ लोग बाढ़ से घर-बार छोड़कर इधर भटककर आये और उन्होंने अपने बसेरे यहाँ डाल लिये। धीरे-धीरे घर बढ़े, मोहल्ला हुआ। फिर गाँव बस गया। पत्थरों को जोड़-जोड़कर लोगों ने घर बना लिये, पर यह गली वैसी ही पड़ी रही, जिस पर दौड़ते भी नहीं बनता था। गाँव की यही मुख्य गली थी। इसी से होकर सारे लोग, औरत, मर्द, बच्चे, गाय, भैंस, बकरी आते-जाते थे। जब वह छोटी थी तब बार-

बार गिर जाती थी दौड़ते हुए ! भारी मोच आ जाती थी, तब उसे गुस्सा आ जाता था। वह दादा से शिकायत करती तो दादा हँसकर बोलते, "हाँ, अच्छी तो है पत्थरवाली गली ! आसानी से कोई चोर नही आ सकता और कोई चुपचाप भाग नही सकता। रात के अँधेरे में कोई भी चले तो उसकी आवाज साफ घरो के अन्दर तक सुनायी देती है।"

छोटा-सा गाँव ! चरती मुर्गियाँ, घूमते सूअर, कंचे खेलते बच्चे, [illegible]-सी बकरियाँ, बत्तखें और कबूतर, यही इन लोगो की दौलत थी, [illegible] थी और यही कुछ पुरानी पीढ़ी, नयी पीढ़ी के लिए वसीयत में छोड़ जाती थी।

सुबह की धुन्ध चारों तरफ फैली रहती, जिसमें दूर-दूर का [illegible] धुँधला जाता। दो मुर्गियाँ सामने की खपरैल की छत पर चढ़ी अपनी गर्दन को झटका-झटकाकर इधर-उधर चौकन्नी-सी हिला रही थी, जैसे वे [illegible] हैरान हों कि आस-पास की चहल-पहल नजर क्यों नहीं आ रही है। नीचे गली मे चरती एक मुर्गी गर्दन तानकर ऊपर चढ़ी छत पर की मुर्गी को निहार रही थी। शिकायत, उलाहने से भरे भाव उसके चेहरे पर थे जैसे कह रही हो, 'ठहरो, बताती हूँ। कहाँ चढ़ी हो, अच्छा अकेले-अकेले चढ़ गयी ?'

धूप का पहला टुकड़ा शाईस्ता की खुली छतरी पर गिरता था [illegible]। धूप का सेंक लेने सारा मोहल्ला कहीं-न-कहीं से यहाँ आ जुटता था। या यों कहें तो ज्यादा ठीक होगा कि जाड़े के दिन की शुरुआत शाईस्ता की छतरी से ही शुरू होती थी।

वही जाना-पहचाना रोजवाला दृश्य ! दातुन करते, ठिठुरते हुए लोग। कोई मुँह धोकर सूरज को प्रणाम कर रहा है। कपड़े के [illegible] बाँधे नन्हें बच्चे। नन्हीं बच्चियों का झुण्ड, सर ढके मकतब पढ़ने जाने की तैयारी में जाना हुआ। जवान लड़कियों का झुण्ड पीछे की दीवार से टिका साथ की दोस्तों की चुगली बताता रहता कि कौन रात शहर से सिनेमा देखकर आयी है, किसने किन वालों से साड़ी माँगी पहनने के लिए या किसने किसके घर से सिनेमा के लिए उधार पैसे माँगे, शहर से लौटने पर किस-किसको अब्बा की डाँट पड़ी, शहर में किसको लड़कों ने छेड़ा, कौन

चोरी से अपने प्रेमी से मिलने गयी, आदि ढेर बातों की गर्मी रहती, जिससे जाड़े की सुबह और गर्म हो उठती। बड़ी लड़कियों की बातें सुनती छोटी लड़कियाँ होतीं, जो आधी बात समझ पातीं और आधी नहीं। फिर उसमें अपनी तरफ से, अपनी अकल से बढ़ा-चढ़ाकर अपने दोस्तों को सुनाती रहतीं।

रामू काका के घर की सूअरनी ने दस बच्चे जने थे, जो अब इस लायक हो गये थे कि माँ के साथ मोहल्ले में घूमें। इसलिए उन्हें खोल दिया जाता था। सूअरनी के साथ उसके बच्चे चीं-चीं चिल्लाते पत्थरवाली गली में घूमते फिरते। जहाँ उन्हें भूख लगती, वहीं सूअरनी पर आक्रमण करते, लगभग उसे गिरा-सा देते और उसके थनों पर टूट पड़ते। सूअरनी करवट लेटी रहती और बच्चे शोर करते उसके थन चूसते रहते।

•

उसे अपने अब्बा की ठीक से याद नहीं, क्योंकि वह घर पर ज्यादा नहीं रहते थे। दादा का नाम रियासत हुसैन तथा अब्बा का नाम दमदार हुसैन था। अम्मा का नाम बुटू था और खाला का अनार।

अब्बा पक्के जुआरी और शराबी थे। अफीम की तस्करी उनका धन्धा था। रोज रात वह ट्रेन के साथ आते और उसी ट्रेन से लौट जाते। रोज रात बारह बजे आनेवाली ट्रेन पर चढ़ जाते और दूसरे स्टेशन पर नाले के पास कूद जाते। बस, इतना ही काम था, जिसका उन्हें ढेर-ढेर पैसा मिलता था। ट्रेन से माल आता और बीच में ही माल गायब कर दिया जाता। कभी पुलिस पीछे लगती तो वह शहर बदल लेते। सारी उम्र ही गली-गली भटकते हुए गुजारी थी। अब्बा के इस काम से दादा काफी दुखी रहते थे। अफीम की तस्करी से लेकर चावल की तस्करी तक करते थे। एक रात वह घर आये तो उनके साथ उनका दोस्त भी था। अम्मा ने दोनों के लिए खाना बनाया। बोरों के पीछे रखी बोतल भी लाकर दी। दोनों रात-गये तक खाते-पीते और तेज-तेज बातें करते रहे। अम्मा पास की ही जमीन पर सो रही थीं, वह भी उनके साथ सो रही थी। अब्बा शराब के नशे में अपने दोस्त से बोले, "मेरी हर चीज में तुम्हारा हिस्सा है। यहाँ तक कि मेरी बीवी में भी

"…हम दिन बाँट लेंगे, जब मैं बाहर रहूँ तो तुम यहाँ रहो, जब तुम बाहर रहो तो मैं इसके साथ रहूँगा।"

अम्मा ने घबराकर अपनी आँखें भींच ली थीं।

अम्मा घर पर चूड़ी बेचने का काम करती थीं। दादा तब मिलिट्री से रिटायर नहीं हुए थे। अब्बा का वह दोस्त गठीले देहवाला लौह-पुरुष था। वह घर पर अक्सर आने लगा। जब भी वह आता, अम्मा के लिए अच्छी-अच्छी चीजें लाता और उसके लिए ढेर-ढेर खिलौने। धीरे-धीरे अम्मा उससे बहुत हिल-मिल गयीं। कुछ ही महीने में अम्मा को पता चला कि वह माँ बननेवाली हैं। अब्बा तस्करी के धन्धे में काफी दिनों से जेल में थे। जब वह लौटे तो उन्हें पता चला। उस रात वह बहुत गुस्से में थे, उन्होंने उस दिन खूब शराब पी और अम्मा की खूब पिटाई की।

"सुन री छिनाल औरत, तूने मेरे साथ धोखा किया, देख लेना इसका नतीजा जल्दी ही भुगत लेगी। तूने मेरी नस्ल खराब कर दी।" अब्बा गुस्से से आगबबूला हो उठे, "औरत की जात साली मुर्गी की जात है, जिसके घर दो दिन बाँध दो, दाना दे दो, वह उसी का आँगन पहचानने लगती है।"

अब्बा गये तो फिर लौटकर नहीं आये। दादा मिलिट्री से पेन्शन लेकर आ गये थे। अब्बा का दोस्त घर पर बराबर आता-जाता था। अम्मा अब दुकान पर भी नहीं बैठती थीं। दुकान की गिरती हुई साख को दादा ने अपने कन्धे दे दिये थे, अब उन्होंने ही दुकान पूरी तरह सँभाल ली थी। अब्बा घर नहीं आते थे, पर उनकी खबर मिल जाती थी कि आजकल उन्होंने तस्करी का धन्धा छोड़ दिया है और ईंट बनाने का ठेका ले लिया है। शहर में एक औरत भी रख ली है। औरत बाल-विधवा है—जवान, चिकनी देहवाली। शराब पी-पीकर अब्बा का कलेजा कौड़ी-[illegible] छलनी हो गया है।

एक दिन पुलिस घर आयी और दादा से बोली, "चल बुड्ढे, अपने बेटे की लाश पहचान ले!"

दादा शहर गये, फिर दो-तीन दिन बाद अब्बा का कफ़न-दफ़न कर लौटे। अब्बा के दोस्तों ने धन्धा छोड़ देने की दुश्मनी उनसे निकाली थी, और शराब में जहर मिलाकर पिला दिया था। अब्बा का वह दोस्त अम्मा

को अपने घर ले गया। अम्मा अपने कपड़ों की गठरी उठाये, इसी पत्थर-वाली गली से उसके पीछे चुपचाप चली गयी थीं। उनके चलने की आहट से दादा लालटेन लेकर वरसती रात में वाहर तक गये थे। गली में कुत्ते भौंकने लगे थे। सूअर दड़वों में कसमसाने लगे थे। मुर्गियाँ अपने-अपने दड़वों में करवट वदलकर पंख फटफटाने लगी थीं, जैसे सब सतर्क होकर पूछ रही हों—कौन···कौन जा रहा है?

दादा लालटेन लेकर नदी तक उनका पीछा करते रहे थे, फिर हारे हुए-से इसी ऊवड़-खावड़ गली से सँभल-सँभलकर लौट आये थे। उस वरसाती रात में पहली वार अव्वा को याद करके चिल्ला-चिल्लाकर रोये थे।

कहते हैं भारी-से-भारी दुख और नदी के वाढ़ का पानी एक-न-एक दिन उतरता है। वस, उसी तरह धीरे-धीरे सव सामान्य हो गया। उसे अम्मा की याद ज्यादा नहीं आती थी, पर अम्मा का गाया दादरा खूब याद आता था। अम्मा की आवाज वड़ी सुरीली थी। अक्सर वह दोपहर को गुदड़ी सिलते-सिलते, चूड़ियाँ पहनाते-पहनाते वरसाती दोपहरिया में दादरा गाया करती थीं—

टोपीवाला सिपहिया मैं साथ चलूंगी जी
तुम चलोगे दुकान, तो मैं भी साथ चलूंगी जी
तुम चलोगे वाजार, तो मैं भी साथ आऊँगी जी
टोपीवाला सिपहिया···
तुम खरीदोगे सौदा, मैं मोल करूँगी जी
तुम जाओगे परदेस, तो मैं भी आऊँगी जी
तुम करोगे कचहरी, तो मैं जाँच करूँगी जी
टोपीवाला सिपहिया···

में एक बहुत बड़े दीवान थे, जो बहुत पैसेवाले थे। उनके घर कितना पैसा है, किसी को पता नही था। पर हर साल मे एक बार घरवालों की निगरानी मे, यानी खुद दीवान साहब की निगरानी मे बडा-सा लोहे का सन्दूक खोला जाता था, और पक्के सीमेण्ट के आँगन मे नोटों के वण्डलों को सावन की धूप दिखायी जाती थी, ताकि दीमक वगैरह न लगने पाये। बड़े-से आँगन में नोटों के वण्डल फैला दिये जाते थे, फिर उन्हें ज्यों-का-त्यों वापस लोहे के सन्दूक मे रख दिया जाता था। जिस दिन नोट सुखाये जाते थे, उस दिन बाहर के किसी परिन्दे को भी फटकने की इजाजत नही थी।

उन्ही दीवान साहब की एक लडकी थी जो आधी पागल थी। उस लडकी के लिए दो नौकर तैनात रहते थे, जो उसे स्कूल ले जाते थे, और वहाँ उसका मन न लगता तो उसे लौटा लाते थे। घर आकर वह थोडी देर मे फिर स्कूल जाने की जिद करती तो फिर उसे स्कूल ले जाते। बस, इसी तरह सारा दिन कटता था उसका नौकरो के साथ। दीवान की लडकी थी, इसलिए मास्टर बहुत घबराते थे। कभी उससे कोई प्रश्न नही करते थे, उसकी परीक्षा नही ली जाती थी, और फिर भी उसे पहले नम्बर से पास कर दिया जाता था। उसके लिए स्कूल तफरीह की जगह थी। जब तक मन करता बैठती, जब मन ऊब जाता लौट आती।

इसी प्रकार दादा बताते हैं इस मोहल्ले के अपने पुराने दोस्तो के बारे मे कि उनका एक दोस्त था जो बड़ा ही दमदार आदमी था। तहमद बाँधे, कन्धे पर गमछा रखे, सिर पर चुमडी बनाकर नमक रखकर बेचता फिरता था। उसकी औरत घर-घर आटा पीसने, दाल दलने जाती थी। धीरे-धीरे पैसा जुडा और उसने अपने लिए जमीन खरीदी। जब मकान बनाने के लिए खुदाई का काम शुरू हुआ तो बरगद के पेड के पास बड़ी-सी एक गुण्ड मिली थी, जिसमें पुराने जमाने के असली चाँदी के रुपये थे। तभी से उनके घर शेख सद्दू का वास हो गया। कहते हैं, जिसके घर उनका वास होता है, पैसों की बरसात होती है। पर घर की पहली औलाद इनकी खुराक हो जाती है। जिनके घर शेख सद्दू होते हैं, उनके घर पर वृहस्पतिवार को गुड़ के गुलगुले बनते हैं। कढाई से गुलगुले निकालने में चम्मच का इस्तेमाल नहीं करते, गर्म-गर्म तेल मे हाथ डालकर गुलगुले छानते हैं। दादा के दोस्त के

घर पैसा-ही-पैसा था, सोना-ही-सोना, पर इनके घर में पहला जो बच्चा होता था, वह मर जाता, यानी शेख सद्दू को भेंट चढ़ जाता था। आखिर में तंग आकर उन्होंने उसे अपने घर से निकालने का उपाय सोचा। दुश्मन से उन्होंने बदला लिया। उनका एक दोस्त भीतर-ही-भीतर उनकी जड़ें खोदता था। उन्होंने उसे घर खाना खाने बुलवाया और जाते समय वही गड़े हुए चाँदी के पाँच सिक्के उसे भेंट करके शेख सद्दू को उसके साथ विदा कर दिया। शेख सद्दू के जाने के बाद उनके घर बाल-बच्चे होने लगे।

दादा बताते हैं, पहले जमाने में शेख सद्दू बहुत बड़ा धनी सेठ था। हमेशा मैला-कुचैला रहता। औरतों के साथ ऐश करना ही उसका मुख्य काम था। मरने के बाद आज भी उसकी आत्मा भटक रही है।

इसी प्रकार दादा न जाने कितने किस्से बताया करते हैं! उन्हें हर घर की बातें मालूम हैं।

दादा बताते हैं मस्जिद के मौलवी साहब के घर में जिन्नात का वास है। घर के अन्दर छोटी-सी मस्जिद में जिन्नात रहते हैं। रोज मौलवी साहब के साथ नमाज पढ़ते हैं, किसी को तंग नहीं करते। बस, हर जुमेरात को खिचड़ी पकाकर नयी सनकी में उन्हें खाना दे दिया जाता है। इसी प्रकार उनके छोटे भाई के घर नापाक जिन्नात हैं। मौलाना की तीन बीवियाँ हैं। हर जुमेरात को एक-एक बीवी के कमरे को नापाक जिन्न खटखटाता है और रात उसी की खाट पर गुजारता है।

दादा इधर काफी बूढ़े हो चले हैं। उनकी दमे की बीमारी बढ़ती जा रही थी। मोतियाबिन्द आँख की रोशनी को खा गया था, जैसे आँख को ग्रहण लग गया हो। अब वे ज्यादातर खाट पर ही लेटे रहते, फिर भी पुरानी आदत उन्हें चैन नहीं लेने देती थी। वे थोड़ी-थोड़ी देर में टटोलते हुए बाहर निकल पड़ते टाइम पूछने के लिए।

दादा कहते हैं कि उसकी बढ़िया जगह शादी कर देंगे। खाला ने पुराने जमाने के चाँदी के सिक्कों को अन्दर के कमरे की दहलीज पर गाड़कर रखा है। यह बात घर के लोगों के सिवा कोई नहीं जानता। ये रुपये उसकी शादी

के लिए रखे गये हैं। मौलाना के छोटे बेटे के लिए उसकी बात आयी थी, पर दादा ने मना कर दिया। दादा कहते हैं जिन्नातों के घर में अपनी बेटी नहीं देंगे।

पीछे आँगन में एक पीपल का पेड था। दादा कहते हैं, जब वह छोटे थे, तब उन्होंने ही उसे लगाया था। पीपल के पेड़ के तने से पीछे घर की दीवार भसकने लगी थी, जिस वजह से दादा ने उस पेड़ को कटवा दिया। तब से ही सारे लोग कहने लगे हैं कि पीपल का पेड़ कटवाना अपशकुन होता है। पर दादा बेचारे क्या करते ? अब गिरे हुए घर को उठानेवाला कौन रह गया था ? बस, खाला की चूड़ियों की दुकान से ही घर का खर्च चलता था। चूड़ियाँ भी रोज-रोज पहनने कौन आता है, त्योहारों पर ही औरतें चूड़ियाँ पहनने आती थी। आँगन के कोने में कच्ची देसी हल्दी का पेड़ था। कुन्दरु की बेल पूरे मँडवे पर फैल गयी थी, जिसमे छोटे-छोटे कुन्दरु लगे थे, जो देखने से बड़े ही भले लगते थे।

वह छोटे टोलेवाले मौलाना की जच्चा बहू को चूड़ियाँ पहनाकर लौट रही थी। आज वह बहुत खुश थी, क्योंकि मौलाना की बहू ने उसे नयी कढ़ाई की हुई ओढ़नी दी थी। लौटने में देर हो गयी। वह जल्दी-जल्दी चलने लगी। रास्ते का कुछ हिस्सा सूने जंगल से पड़ता था।

उसके हाथ मे चूड़ियों का तोडा था, जिसे पकडे वह लौट रही थी। शाम जंगल के रास्ते में उतर आयी थी। वह तेज-तेज कदम बढ़ाती चलने लगी कि उसने अचानक देखा, सामने वही नुक्कड़वाला दुकानदार साइकिल पर शहर जा रहा है।

उसे देखते ही वह सहम-सी गयी और झट-से पेड़ की आड में हो गयी, पर दुकानदार ने उसे देख लिया था। वह साइकिल से नीचे उतरा और साइकिल को पेड़ से टिकाकर उसकी ओर बढा और उसे पकड़ लिया।

वह बहुत छटपटायी, चिल्लायी, उसके हाथ में चूड़ियों का जो तोड़ा था, वह पेड़ से टकरा गया और चूड़ियाँ टूटकर बिखर गयीं। काँच की सारी चूड़ियाँ उसकी टूटी इज्जत की तरह टूट गयी थीं। खाला कहती हैं

घर पैसा-ही-पैसा था, सोना-ही-सोना, पर इनके घर में पहला जो बच्चा होता था, वह मर जाता, यानी शेख सद्दू को भेंट चढ़ जाता था। आखिर में तंग आकर उन्होंने उसे अपने घर से निकालने का उपाय सोचा। दुश्मन से उन्होंने बदला लिया। उनका एक दोस्त भीतर-ही-भीतर उनकी जड़ें खोदता था। उन्होंने उसे घर खाना खाने बुलवाया और जाते समय वहीं गड़े हुए चाँदी के पाँच सिक्के उसे भेंट करके शेख सद्दू को उसके साथ विदा कर दिया। शेख सद्दू के जाने के बाद उनके घर बाल-बच्चे होने लगे।

दादा बताते हैं, पहले जमाने में शेख सद्दू बहुत बड़ा धनी सेठ था। हमेशा मैला-कुचैला रहता। औरतों के साथ ऐश करना ही उसका मुख्य काम था। मरने के बाद आज भी उसकी आत्मा भटक रही है।

इसी प्रकार दादा न जाने कितने किस्से बताया करते हैं! उन्हें हर घर की बातें मालूम हैं।

दादा बताते हैं मस्जिद के मौलवी साहब के घर में जिन्नात का वास है। घर के अन्दर छोटी-सी मस्जिद में जिन्नात रहते हैं। रोज मौलवी साहब के साथ नमाज पढ़ते हैं, किसी को तंग नहीं करते। बस, हर जुमेरात को खिचड़ी पकाकर नयी सनकी में उन्हें खाना दे दिया जाता है। इसी प्रकार उनके छोटे भाई के घर नापाक जिन्नात हैं। मौलाना की तीन बीवियाँ हैं। हर जुमेरात को एक-एक बीवी के कमरे को नापाक जिन्न खटखटाता है और रात उसी की खाट पर गुजारता है।

दादा इधर काफी बूढ़े हो चले हैं। उनकी दमे की बीमारी बढ़ती जा रही थी। मोतियाबिन्द आँख की रोशनी को खा गया था, जैसे आँख को ग्रहण लग गया हो। अब वे ज्यादातर खाट पर ही लेटे रहते, फिर भी पुरानी आदत उन्हें चैन नहीं लेने देती थी। वे थोड़ी-थोड़ी देर में टटोलते हुए बाहर निकल पड़ते टाइम पूछने के लिए।

दादा कहते हैं कि उसकी बढ़िया जगह शादी कर देंगे। खाला ने पुराने जमाने के चाँदी के सिक्कों को अन्दर के कमरे की दहलीज पर गाड़कर रखा है। यह बात घर के लोगों के सिवा कोई नहीं जानता। ये रुपये उसकी शादी

के लिए रखे गये हैं। मौलाना के छोटे बेटे के लिए उसकी बात आयी थी, पर दादा ने मना कर दिया। दादा कहते हैं जिन्नातों के घर में अपनी बेटी नही देंगे।

पीछे आँगन में एक पीपल का पेड था। दादा कहते हैं, जब वह छोटे थे, तब उन्होने ही उसे लगाया था। पीपल के पेड़ के तने से पीछे घर की दीवार भसकने लगी थी, जिस वजह से दादा ने उस पेड़ को कटवा दिया। तब से ही सारे लोग कहने लगे हैं कि पीपल का पेड कटवाना अपशकुन होता है। पर दादा बेचारे क्या करते ? अब गिरे हुए घर को उठानेवाला कौन रह गया था ? बस, खाला की चूड़ियों की दुकान से ही घर का खर्च चलता था। चूडियाँ भी रोज-रोज पहनने कौन आता है, त्योहारों पर ही औरतें चूडियाँ पहनने आती थी। आँगन के कोने मे कच्ची देसी हल्दी का पेड़ था। कुन्दरु की वेल पूरे मँडवे पर फैल गयी थी, जिसमे छोटे-छोटे कुन्दरु लगे थे, जो देखने से बड़े ही भले लगते थे।

वह छोटे टोलेवाले मौलाना की जच्चा बहू को चूड़ियाँ पहनाकर लौट रही थी। आज वह बहुत खुश थी, क्योंकि मौलाना की बहू ने उसे नयी कढ़ाई की हुई ओढ़नी दी थी। लौटने में देर हो गयी। वह जल्दी-जल्दी चलने लगी। रास्ते का कुछ हिस्सा सूने जंगल से पड़ता था।

उसके हाथ मे चूडियों का तोडा था, जिसे पकडे वह लौट रही थी। शाम जगल के रास्ते मे उतर आयी थी। वह तेज-तेज कदम बढ़ाती चलने लगी कि उसने अचानक देखा, सामने वही नुक्कड़वाला दुकानदार साइकिल पर शहर जा रहा है।

उसे देखते ही वह सहम-सी गयी और झट-से पेड़ की आड में हो गयी, पर दुकानदार ने उसे देख लिया था। वह साइकिल से नीचे उतरा और साइकिल को पेड़ से टिकाकर उसकी ओर बढा और उसे पकड़ लिया।

वह बहुत छटपटायी, चिल्लायी, उसके हाथ में चूड़ियों का जो तोड़ा था, वह पेड़ से टकरा गया और चूडियाँ टूटकर बिखर गयीं। काँच की सारी चूड़ियाँ उसकी टूटी इज्जत की तरह टूट गयी थीं। खाला कहती है

औरत की इज्जत साबुत चूड़ी की तरह है, यदि एक बार टूटी तो फिर टूटती ही चली जाती है। उस वीरान जंगल में सिवा लौटते पक्षियों के कोई दूसरा उसकी गुहार सुननेवाला नहीं था।

रात-गये जब वह घर लौटी तब दादा लालटेन जलाकर सामने बैठे उसका रास्ता देख रहे थे। खाला दरांती से बड़ा-सा कटहल काट रही थीं। वह जमीन पर दादा के पास बैठ गयी और फूट-फूटकर रोने लगी। खाला हैरान होकर उसके पास आ गयीं। उसने रो-रोकर सारी बात बतायी। दादा गुस्से से तनतना उठे, जैसे अलार्म घड़ी बज उठी हो। रात वह सो नहीं पायी थी, उसने देखा दादा भी सारी रात अपनी खाट पर बैठे रहे। दीये के उजाले में उनका साया लम्बा होता दीवार तक खिंच गया था।

सुबह जब सूरज टहल-टहलकर अपने आने का ऐलान सारे मोहल्ले में कर रहा था, तब खाला ने रो-रोकर उसे उठाया, "जेबा उठ, देख तेरे बाबा को क्या हो गया!"

उसने नींद से चौंककर आँखें खोलीं और भयभीत आँखों से खाला को देखा, फिर दादा की ओर सिर घुमाया। दादा कोने में गठरी बने लुढ़के पड़े थे—बिल्कुल बन्द घड़ी की तरह। सामने का दरवाजा खुला था। नीचे-नीचे उतरती पत्थरवाली गली थी। उसने डबडबाई आँखों से देखा। अब इस पर कौन उतरकर आया-जाया करेगा?

जमाना बदल गया है

गली के दोराहे पर बनी उस तीन-मंजिला हवेली की मटमैली पीली रंगत को देखते ही मन प्रसन्नता से किलक उठा। मन में एक हूक-सी उठी। यह घर जिसमें उसका बचपना पला था, यहीं उसने उम्र की उस सरहद को छुआ था जिसे छूते ही मन में ढेर-सारी तरंगें उठती हैं, आँखों में इन्द्र-धनुषी रंग छा जाते हैं। आज वही घर अजनबी, चुप-सा लगा। उसकी दीवारें, जो पहले हमेशा ड्यूटी पर तैनात सिपाही की वर्दी की तरह चमकती रहती थीं, आज मटमैली होकर धूल खा रही थीं।

ताँगा जैसे ही घर के सामने रुका, बदरी काका सामने बगीचे में दिख गये। उनके हाथ में कैंची थी, वह गेट पर दौड़े-से आये, "बिटिया आ गयी, बिटिया आ गयी..."

उनकी लम्बी गुहार सुनते ही सामने के हॉल से बाबूजी जल्दी-जल्दी आँख का चश्मा ठीक करते, लगभग दौड़ते-से बाहर आये।

"अरे बेटा, तार क्यों नहीं कर दिया, कोई स्टेशन पर लेने आ जाता!" बाबूजी तेजी से उसके निकट आये और ममता से उसके सर पर हाथ फेरते हुए बोले। हड़बड़ी में उन्हें ध्यान ही नहीं रहा था कि उनकी आँख भर आयी है। जैसे ही उन्हें इस बात का ध्यान आया, उन्होंने तुरन्त अपने ऊपर काबू किया। उसने पहली ही नजर में ताड़ लिया कि बाबूजी उम्र से ज्यादा बूढ़े लगने लगे हैं।

"बदरी काका, अब तो तुम वाकई बूढ़े हो गये हो," उसने कहा और बाबूजी के साथ अन्दर की ओर बढ़ गयी।

मौत का घर जो विचित्र सन्नाटे और सूनेपन से सहमा हुआ-सा था, लगा थोड़ी देर के लिए प्रसन्नता से भर गया है। नानीमाँ के बिना वह घर कितना विचित्र लग रहा था ! सारी हवेली में वही एक थीं जो तेज बोला करती थीं, और आज उनका न होना मन को किस बुरी तरह घोट रहा था। घर के सारे लोग इकट्ठे हो गये थे। आँगन में छत तक चढ़ी चमेली खूब-खूब फूल आयी थी, जिसकी महक से सारा घर भरा हुआ था। पूरे घर में बस चमेली ही थी जो आज भी उसी तरह महक रही थी, चहक रही थी।

पूजा की थाली हाथ में लिये माँ आती दिखीं, तो वह चौंक पड़ी। उसे आश्चर्य हुआ, धक्का-सा लगा। माँ इतनी जल्दी इतनी बूढ़ी कैसे दिखने लगीं ! माँ के आते ही धूप-अगरबत्ती और घी की सुगन्ध वातावरण में रच-बस गयी, जो उनकी पूजा की थाली से उठ रही थी। उस महक के पास आते ही वह उठकर खड़ी हो गयी एकदम से···इत्ते-इत्ते वर्ष बाहर रहने से भी बचपन के संस्कार गये नहीं हैं, उसने महसूस किया।

"लगता है बिटिया हॉस्टल से आ गयी है।" सोना मौसी उसके कमरे का ताला खोलते प्रसन्नता से चहकीं और बोलीं, "साथवाले कमरे भी कल भर जायेंगे।"

"अच्छा, क्या भैया, दीदी और सीमा आ रहे हैं।" प्रसन्नता का तेज झोंका आया और बरसों के बन्द कमरे को जैसे अपनी ताजी हवा से महका गया। सब कितने, कितने दूर हो गये हैं। बाबूजी के चार बच्चे वास्तव में चार दिशाओं की तरह बँट गये थे। सीमा के ब्याह में सब इकट्ठे हुए थे और आज सीमा तीन बच्चों की माँ हो गयी है। भैया जब से विदेश से लौटे हैं उसने उन्हें नहीं देखा। सीमा के ब्याह में भी वह कहाँ आ पाये थे।

कमरे बरसों से ज्यों-के-त्यों थे। हर चीज वही। वही पलँग, दीवार से लगी पुस्तकों की अलमारी, आईना वगैरह सब जैसा-का-तैसा है। कमरे में घुसते ही बरसों पहले की स्मृति ने उसे कुरेद-सा दिया। तब यह कमरा

कितना भला लगता था। दूसरी मंजिल पर सब बहनों के अलग-अलग कमरे थे। सबने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार उन्हें सजा रखा था। भैया के कमरे में तब किसी को जाने की इजाजत नहीं थी, शायद वहाँ आज भी सुन्दर-सुन्दर फिल्म-स्टारों के चित्र टँगे हों।

"बिटिया, अपना सामान देख लो," सोना मौसी लम्बी घुमावदार सीढ़ियाँ चढ़ते हाँफ-सी गयी थीं, फूली हुई साँस को काबू में करते-करते बोलीं।

"सोना मौसी, पहले तो तुम सारी हवेली में चकरी की तरह घूमा करती थीं और अब सीढ़ियाँ चढ़ते हुए थकने लगीं," उसने अपना सूटकेस अलमारी में रखते हुए मजाक से पूछा।

"पहले-सी देह, पहले का समय अब कहाँ रह गया, बिटिया!" सोना मौसी ठण्डी साँस खींचते हुए बोलती हैं, "बड़ी मालकिन भी मर गयी। मरते समय तुम्हें, बच्चों को खूब याद करती थीं। किसी ने सोचा भी नहीं था कि वह अचानक सोते-सोते ही चल बसेंगी!"

"सच मौसी, नानीमाँ की बहुत याद आती है।" उसने उदास होते हुए कहा, "कितना विचित्र है, हम लोग उनकी मौत के बाद इकट्ठे हो रहे हैं!" कहते हुए उसने खिड़की का पट खोल दिया। खिड़की खोलते ही नीचे बगीचे में खड़ा बट-वृक्ष दिख गया, जिस पर आज भी ढेर-सारी चिड़ियाँ शोर कर रही थीं। पहले सावन के महीने में झूले डाले जाते थे। सारा बगीचा सावन के गीतों से गूँजने लगता था, जवान ठहाके बगीचे में फूटा करते थे।

"दीदी भी आ रही हैं, सोना मौसी?" उसने पलटकर पूछा।

"नहीं, खबर आयी है दामाद बाबू की तबीयत अच्छी नहीं है, इसलिए वह नहीं आयेंगी," सोना मौसी पलँग पर नयी चादर बिछाते-बिछाते बोलीं।

ओह! तो दीदी नहीं आ रही हैं। उन्हें देखे भी कितना समय हो गया है! चलो, भैया को देख लेगी वह। कैसे दिखते होंगे अब! अब तो कितने ही स्मार्ट हो गये होंगे! पहले वे लोग छुट्टियों में आते थे तो कितना ऊधम मचाते थे। भैया जब कालेज में पढ़ने लगे तब उनका स्वागत घर में ऐसे

होता था जैसे किसी राजा के आगमन की तैयारियाँ हो रही हों। सारा घर टिप-टाप किया जाता था। वह तब छोटी थी और अपनी नयी फ्राक और तेल-चुपड़े वालों में सारे घर में घूम-घूमकर भैया का इन्तजार करती थी।

"क्या वात है, विटिया को कोई देखने आनेवाला है?" वदरी काका छेड़ते।

"देखो काका, ठीक नहीं होगा!" वह मुँह बिचकाकर रुआँसी हो जाती।

वावूजी ने खासतौर पर नीचे जमीन में एक कमरा याने तलघर वनवा दिया था, भैया के लिए, भैया गरमी की छुट्टियाँ इसी कमरे में काटते थे। दीदी काफी चिढ़ जाती थी, उन तीनों वहनों को अपने तपते कमरों में ही दोपहर काटनी पड़ती थी। लड़का होने का फायदा भैया खूव उठाते थे।

'देखो लड़का होने का फायदा,' दीदी वड़वड़ाती और गीले खस के पंखे से हवा करती वोलती, 'विटियन की तो कोई कद्र ही नहीं, कोई पूछता नहीं, जैसे घूरे पर से उठाकर ले आये हों। हे भगवान, अगले जनम में तू भैया की जगह मुझे और मेरी जगह भैया को जनम देना, तव देखेंगे लाट साहव के नखरे।' दीदी वड़वड़ाती फिर जैसे अपने को ही समझाती वोलती, 'पर भगवान ने सुन भी ली तो अगले जनम में ही आराम मिलेगा, इस जनम में तो इसी कमरे में रहना है न!'

शाम को घर में वेतरह हलचल हुई। जो घर कुछ देर पहले सन्नाटे से भरा था, अव वहाँ पुरानी जानी-पहचानी आवाजों का शोर था। सुवह से ही सारा घर व्यस्त-सा हो उठा था। वावूजी हर नौकर को कुछ-न-कुछ आदेश दे रहे थे। सोना मौसी कमरों की सफाई में लगी थीं। अम्वो रसोई में व्यस्त थीं, उन्हें तो जैसे सवकी पसन्द रटे हुए पहाड़े की तरह याद थी।

भैया, भाभी, सीमा, राकेश यानी सीमा के पति, माँ, वावूजी सव

बरसों बाद जब पीछे की बारादरी में जमा हुए थे, तब नानीमाँ की कमी किस तरह से खली थी। ऐसे ही तो सब जमा होते थे। नानीमाँ रात-गये तक उन लोगों से कालेज की बातें पूछा करती थी, आज उनकी खाली कुरसी ने मन को कितना सहमा-सा दिया था। आदमी हँसता, खेलता अचानक कहाँ चला जाता है!

शाम से माँ नानीमाँ को याद कर कितनी बार रो पड़ी थीं, सीमा तो जैसे आज भी नन्ही बच्ची थी। वह नानीमाँ को याद कर बच्चों-सी रो रही थी।

उसकी आँखें जो भैया को निहार रही थीं, अपनी पुरानी पहचानवाले भैया को ही देखना चाहती थीं, पर चुहलबाजी में सबसे आगे रहनेवाले भैया की जगह गम्भीर, संजीदा भैया को देख उसका मन बुझ-सा गया, जैसे किसी ने उसके भीतर की खुशी का स्विच बन्द कर दिया हो। क्या समय आदमी को इतना बदल देता है!

नानीमाँ के कमरे में जब वे लोग गये तब भिड़े हुए कपाट को बाबूजी ने आहिस्ता-से खोला। सब धक्-से रह गये। सूना बड़ा-सा कमरा, और उनकी याद में जल रहा था एक घी का दीया। उसे आज भी नानीमाँ का पुराना कमरा याद है। नानीमाँ जो जमींदारनी बहू कहलाती थी। खूब रोब-दाब था उनका। माँ के जनमते ही नाना मर गये थे और नानीमाँ ने जमींदारी की ढीली पड़ती रास को फिर से खींचकर मजबूती से सँभाल लिया था। माँ के थोड़ा बड़ा होते ही उन्होंने घर-दामाद रख लिया था। बाबूजी को नानीमाँ ने ही वकालत पास कराकर वकील बनाया था।

बहुत बड़ा हालनुमा कमरा था नानीमाँ का। यह कमरा घर के आखिरी हिस्से में पड़ता था इसलिए बहुत शान्ति रहती थी। खिड़की की सलाखों को थामे चमेली की बेल ऊपर-ऊपर तक चली गयी थी। खिले-खिले चिटके हुए सफेद फूल शरारती बच्चों की तरह आँखें फाड़े खिड़की से अन्दर झाँकते रहते थे और अपनी महक को सारे कमरे में सींच देते थे। ऐन खिड़की के पास एक ऊँची लम्बी-सी तिपाई पर पीतल का बड़ा-सा नक्काशी-दार फूलदान रखा रहता था। फूलदान इतना बड़ा था कि उसमें आसानी से नन्हें-से बच्चे को छिपाया जा सकता था। अब उस पर गर्द-ही-गर्द...

लेकिन पहले सारे वाग के फूल उसमें सजे रहते थे, जिनकी मीठी-मीठी गन्ध सारे वातावरण पर छायी रहती थी। वड़ा-सा नक्काशीदार पलँग था जिस पर पीतल की मूठ लगी थी। पहले इस पर मखमल की कालरवाली चादर विछी रहती थी, पर अव सादा चादर विछी थी। वड़ी-वड़ी शीशे-लगी अलमारियाँ थीं। दीवारों पर आदमकद तस्वीरें लगी थीं। एक चित्र, जो नानीमाँ की जवानी का था, वहुत सुन्दर था। नाना की भी एक वहुत वड़ी तस्वीर लगी हुई रखी थी। पहले जव भी वह नानीमाँ के कमरे में आती, तो वड़े ध्यान से नाना की तस्वीर देखा करती थी। इतना तेज/था उनके चेहरे पर कि वह ठगी-सी घूरती रहती थी। जरी का साफा वाँधे, शेरवानी पहने वड़े रोवीले दिखते थे वह।

नानीमाँ की आँखों पर पट्टी वँधी रहती थी। तेज रोशनी से उनकी आँखों में तकलीफ होती थी। उसे जव से नानीमाँ की याद है उसने हमेशा उनकी आँखों पर पट्टी वँधी हुई देखी थी। झुर्रियों से भरा सफेद चेहरा था, गाल लाल-लाल अंगारे-से दहकते रहते थे। छोटे कद की थीं नानीमाँ। दिन-भर विस्तर पर पड़ी रहतीं, शाम को उनकी खास नौकरानी उमा उन्हें वगीचे में टहलाने ले जाया करती। जव भी वह नानीमाँ को देखती, उसके मन में ढेर-सारी दया, ममता, प्यार उमड़ पड़ता था। कितने प्रश्न थे, जो मन में उठते थे—कव से कम दिखने लगा ? पट्टी क्यों वाँधे रहती हैं ? पर किसी से पूछने का साहस नहीं होता था।

नानीमाँ की आँख पर पट्टी वँधी रहती थी, पर वह हवेली की हर हल-चल से पूर्ण परिचित रहती थीं। जव भी दोपहर को वह उनके कमरे में आती, वे उसे अपने पास वैठा लेतीं और पूछतीं, "शालू, गुलाव की महक तीखी और तेज है, क्या ठण्ड शुरू हो गयी ?"

"हाँ नानीमाँ," वह उत्तर देती। नानीमाँ फूलों की गन्ध से हर मौसम का पता लगा लेतीं। हर मौसम के फूलों के दर्शन भी उन्हीं के कमरे में आने से होते। उनकी ऊपर की आँखें भगवान ने वन्द कर दी थीं, पर उन्हें हर वात की खवर होती। उनका रोम-रोम आँख हो गया था। वह अनगिनत आँखों से देखतीं। नानीमाँ अपने वचपन की वातें अक्सर सभी वहनों को सुनाया करतीं।

"सबका बचपन एक-सा होता है, सबको तितली पकड़ने का शौक होता है," नानीमाँ बताती, "हम लोग भी गेट खोलकर भाग जाते। जब पिताजी को पता चलता तब हमारी गवर्नेस को सजा मिलती। पता है क्या सजा होती थी? एक पैर पर उछलते हुए मैदान के दस चक्कर लगाने होते। हमारी गवर्नेस जरूरत से ज्यादा मोटी थी। बड़ा मजा आता। जब भी उसे तंग करने का मूड होता, हम लोग महल से भाग जाते और फिर उसे सजा मिलती। बेचारी रोती रहती, इतने लोगों के सामने सजा दी जाती, अपमान के मारे कई-कई दिन भूखी रहती।

"मिस चू जो हमें अँगरेजी पढ़ाया करती थीं," नानीमाँ बताया करतीं, "वह यहीं घर पर रहती थीं। मिस चू अधेड़ उम्र की महिला थीं, लेकिन उन्होंने शादी नहीं की थी। अण्डे की तरह सफेद रंग था उनका। जहाँ भी वे जातीं, उनके साथ हमें भी जाना होता था। शाम को जब हम लोग मैदान में खेला करते तब उधर जाने की किसी को इजाजत नहीं थी। एक बार मिस चू के कमरे में जो मखमली कालीन बिछा रहता था—उस पर एक चिड़िया का अण्डा गिर गया। भगवान जाने चिड़िया ने घोंसला कहाँ बनाया था और कैसे अण्डा कालीन पर गिर गया। कालीन पर गिरते ही वह फूट गया, कालीन खराब हो गया। मिस चू ने सारे घर में तूफान-सा खड़ा कर दिया और बेचारी मीरो को, जो उनकी नौकरानी थी, खूब सजा दी गयी।"

नानीमाँ बतातीं और बता-बताकर ही खूब हँसा करतीं।

अलग नौकर नियुक्त थे। रोज सुबह-शाम कुत्ते अपने नौकरों के साथ घूमने जाते और शाम को बगीचे में बाबूजी और भैया के साथ गेंद खेलते। दिन-भर वे बन्द रहते। अपने बन्द कमरों में उछल-उछलकर भौंकते रहते। उनके गले में पड़ी चेन की आवाज दूर तक सुनायी देती।

दिन का तीसरा पहर शुरू होते ही जब वे लोग बगीचे में जाने की तैयारी में रहते, धूप दीवारों से सरककर नीचे उतर रही होती। गिलहरियाँ पेड़ की परछाईं को देख-देखकर उछल-कूद कर रही होतीं। दरख्तों के साये लम्बे हो जाते। पेड़ से गिरे सूखे पत्ते शराबी-से इधर-उधर डोल रहे होते। त्रिलोकी अपने साथियों के साथ कुत्तों को हवाखोरी के लिए ले जाने की तैयारी करता होता और कुत्ते प्रसन्नता से दुम हिलाते रहते। घोड़ों की हिन-हिनाहट और कुत्तों की भुकानों से हवेली का पीछे का हिस्सा हमेशा आबाद-सा रहता। जब भी कुत्तों की भुकानें सुनायी देतीं, गिलहरी झट-से पेड़ पर चढ़कर दुबक जाती। फिर थोड़ी देर के बाद खतरे की सम्भावना न देखते हुए नीचे उतर जाती। उसके कमरे की एक खिड़की बगीचे में खुलती थी, वहाँ से वह देखती। गेंदे के फूलों की बहार रहती। पीले-पीले हल्दी रंग में सने फूल हरे-हरे नाजुक पत्तों के बीच सुन्दर लगते।

याद करते-करते उसकी आँखें नम हो आयीं। नानीमाँ के कमरे में रखा हुआ दीया अभी भी जल रहा था। जैसे आभास दे रहा हो कि नहीं अभी भी वह हैं, उनकी याद है।

शाम को उसने देखा, सीमा के कमरे में एक और पलंग लगा है, तो उसे आश्चर्य हुआ।

"मौसी, दूसरा पलंग किसके लिए लगा रही हो?"

"अरे, दामाद बाबू के लिए लगा रही हूँ," सोना मौसी बोलीं तो वह हैरान रह गयी और शर्म से उसका सर नीचा हो गया।

"तुमसे किसने कहा मौसी, सीमा के कमरे में दामाद बाबू का पलंग लगाने को!" उसने आश्चर्य से पूछा।

पहले दामादों को सामने मर्दाने में सुलाया जाता था। वे केवल खाना

खाने ही भीतर आते थे। इसीलिए आज यह सब देख उसे बड़ा आश्चर्य हो रहा था। मीमा के कमरे मे बाकायदा दो पलँग बिछे हुए थे, जिन पर फूलों-वाली चादर पड़ी थी।

"अरे बिटिया, तुम शहर में रहनेवाले लोग···सुना है वहाँ तो दिन-भर औरत-मरद की सेज सजी रहती है। बिस्तर तक नहीं उठाये जाते!"

"अच्छा," उसे ज़ोर-से हँसी आ गयी, "इतनी सारी जानकारी तुम्हें कौन दे गया?"

"अरे बिटिया, हम शहर नहीं देखे तो क्या हुआ, लल्लन की माँ बेटे के साथ बम्बई घूम आयी है। वही लौटकर बता रही थी। वहाँ बिस्तर उठाने का रिवाज़ ही नहीं। जमाना बदल गया बिटिया, अब कौन दामाद मर्दाने में सोते हैं। गाँव मे उस दिन पटवारी का दामाद आया था, उसे बाहर सुलाया, तो नाराज़ हो गया। गाँव-भर मे हल्ला हो गया। वह ऐसा नाराज़ हुआ कि उसे मनाना मुश्किल हो गया। कौन जाने हमारे दामाद बाबू भी नाराज़ हो जायें!" सोना मौसी बिस्तर लगाकर वहीं बैठ गयी, "अरे बिटिया, दामाद की जात और सुआ की जात एक है। सोने के पिंजरे में भी रखो तो उड़ जाते हैं।" फिर वह उठते हुए बोली, "चलूँ, शाम का दीया मन्दिर में जलाना है, आरती लेने तो नीचे आओगी न!"

"हाँ!" उसने हैरानी से उत्तर दिया। उसे आश्चर्य हुआ। सोना मौसी का बात करने का ढंग कितना बदल गया है, पहले तो वह हुक्म चलाती थी। मन्दिर में पहली घण्टी टनटनायी नहीं कि हाथ का काम छोड़कर मन्दिर की ओर दौड़ना पड़ता था आरती के समय, नहीं तो ख़ैर नहीं रहती थी। कोई देर से पहुँचता तो बस दारोगा की तरह बड़ी-बड़ी आँख निकालकर बोलतीं, "कहाँ रह गयी थी? आरती का टाइम नहीं मालूम?" और अब वही मौसी कैसा धीमा बोलने लगी हैं।

"हे राम, ये साड़ी है! पहले तो नाचनेवालियाँ ऐसे पतले कपड़े पहनती थीं, अच्छे घर की बहू-बेटियाँ नहीं!" उसकी अमरीकन जार्जेट की साड़ी देख सोना मौसी हैरानी से बड़बड़ायी।

"तुम पहनोगी, मौसी! तुम्हें दो-चार दे जाऊँगी।" उसने हँसते हुए कहा।

"हमें कौन ऐसे कपड़े पहनने हैं," सोना मौसी ने घबराकर कहा, "शहर का फैशन शहर में, गाँव का गाँव में।"

"मौसी, तुम शहर आओ तो मजा आये, खूब घूमा दूं तुम्हें।"

"हमें बुढ़ापे में अपना परलोक नहीं बिगाड़ना," सोना मौसी बोलीं और कमरे से बाहर आ गयीं।

काफी पहले गाँव से बाबूजी ने नौकर भेजा था, पर वह शहर की चमक-दमक देखकर घबरा गया। रोज काम खत्म कर रोता, "दीदी बाई, हमें गाँव भेज दो, यहाँ तो हमारे प्राण निकल जायेंगे, चौबीस घण्टे घर में कैद रहो। लगता है जीते-जी नरक भोग रहे हैं। न त्योहार पता चले, न नेम-दस्तूर, जात-पात तो है ही नहीं। राम-राम। शेर और बकरी एक घाट पर पानी पी रहे हैं। हमें तो गाँव भिजवा दो, होली आ रही है और हमारा जी कलप रहा है गाँव जाने को।"

उसकी बातों को सब हंसकर टाल देते। वह जरूर उससे डर गयी थी और किसी सामान के लिए उसे पैसा कभी नहीं देती थी, कि कहीं टिकिट कटाकर भाग न जाये, पर सचमुच एक दिन वह बाजार गया तो लौटा ही नहीं। जब दूसरा दिन निकला तो परेशान, पुलिस में रिपोर्ट लिखवायी, शहर का चप्पा-चप्पा छान मारा, पर पता नहीं लगा। बाद में दो-तीन माह के बाद बाबूजी का पत्र आया कि वह नौकर एक महीने में पैदल चलकर गाँव पहुँच गया है।

सुबह-सुबह बाबूजी पूजा करके दोनी में प्रसाद लेकर हमेशा की तरह चिल्लाये, "शालू, सीमा, रज्जन, प्रसाद लो!"

"अरे धीरे पुकारो, सीमा और कुँवरजी अभी सो रहे हैं!" माँ ने अपने कमरे से निकलते हुए उन्हें बताया।

"क्यों!" बाबूजी अचकचा-से गये, फिर जैसे कुछ समझते हुए चुपचाप बाहर चले गये।

सीढ़ियों पर खड़ी वह जाते हुए बाबूजी को देखती रही। उसे आश्चर्य हुआ। यदि पहले का समय होता तो बाबूजी घर सर पर उठा लेते, पर

आज वह कितनी आसानी से बाहर चले गये थे। उसे याद आया, दीदी का जब ब्याह हुआ था और वे सभी पढ़ती थीं और छुट्टियों में घर आयी हुई थीं तभी पहली बार दीदी अपनी नन्ही-सी बेटी को लेकर मायके आयी हुई थी।

रात को दीदी मुन्नी को उसे थमाकर ऊपर छत पर जीजाजी के पास चली गयी थी, जहाँ से वह लौटी नहीं, शायद वहीं सो गयी थी। मुन्नी, जो उसके कमरे में ही सो गयी थी, अचानक उठकर रोने लगी। उसे भय हुआ कहीं बाबूजी जान न लें। वह मुन्नी को दबाये, धीरे-धीरे सीढ़ियाँ चढ़ती ऊपर छत पर चढ़ गयी और अन्तिम सीढ़ी पर खड़ी होकर धीरे-धीरे पुकारने लगी—दीदी, दीदी। दो-तीन बार आवाज देने पर दीदी उठी। उन्हें मुन्नी को थमाकर वह लौट पड़ी। पर नीचे उतरते ही वह सन्नाटे में आ गयी। बाबूजी का कमरा खुला था और वे दरवाजे पर ही खड़े थे।

"तुम ऊपर कहाँ गयी थी?"

"जी," वह हकलायी थी, "मुन्नी रो रही थी तो दीदी को देने गयी थी।"

"वहाँ तो कुँवर साहब सो रहे हैं!" बाबूजी ने जोर-से डपटकर पूछा।

"दीदी भी ऊपर है।" उसने सहमकर धीरे-से सफ़ाई दी।

"हूँ," बाबूजी एकदम गरजे, "अपना मुँह तो धुलता नहीं, दूसरे का मुँह धोने चली है। पढ़ाई-लिखाई करना छोड़ दूसरे के बच्चे सँभालती फिर रही है। खबरदार, कल से जो मुन्नी को अपने पास रखा और गृहस्थ लोगों के बीच में गयी तो टाँग तोड़ दूँगा, जा, सीधी अपने कमरे में।"

वह सहमी-सी अपने कमरे में चली गयी। दरवाजा लगाते हुए उसने सुना बाबूजी नाराज हो रहे थे, "लड़की को छत पर किसने भेजा? अरे, दो दिन मायके आयी है, तो अलग कमरे में नहीं सो सकती? छोटी बहनों पर खराब असर पड़ता है। समझा देना कुसुम को, यह चलन यहाँ नहीं चलेगा। दो दिन के लिए आयी है, लाज-शरम से रहे, बस।"

बाबूजी की डाँट केवल माँ के लिए ही नहीं थी, ऊपर तक गयी थी। दीदी ने सुना और दूसरे दिन से ही दीदी चोर की तरह बाबूजी से छुपती-फिरती रही। सही भी तो था, वे लोग इतनी बड़ी हो गयी थीं, पर कभी बाबूजी के पास माँ को बैठे नहीं देखा। एक दिन सीमा चुपचाप बता रही

थी कि माँ बाबूजी के कमरे से तेजी से निकलकर अपने कमरे में चली गयी है।

भैया की नयी-नयी शादी हुई और भाभी घर आयी हुई थीं। गर्मियों के दिन थे, सारे दिन भैया-भाभी अपने कमरे में रहते। शाम को भी अपने कमरे से बाहर नहीं आते तो उन लोगों को बड़ा आश्चर्य होता था कि भैया और भाभी को गरमी नहीं लगती! एक दिन शाम को नानीमाँ और वे लोग सब आँगन में बैठे हुए थे तब नानीमाँ ने पलँग पर बैठे-बैठे भैया को आवाज दी। थोड़ी देर में भैया नीचे आये, उनके पीछे भाभी भी थीं।

"लो बेटा, थोड़ी शाम की खुली हवा भी खा लो," नानीमाँ ने हुक्का गुड़गुड़ाना छोड़कर भैया से कहा और खुद पलँग के किनारे खिसक गयीं। भैया नानीमाँ की गोद में सर रखकर लेट गये। भाभी पास रखी मचोली पर बैठ गयीं, पर थोड़ी ही देर में भाभी बैठे-बैठे बोर हो गयीं तो उन्होंने धीरे-से भैया के पैर को छू दिया, जैसे इशारा कर रही हों कि कमरे में चलो। भैया पहले तो चमककर उठ गये, पर तुरन्त फिर सतर्क हो गये।

"क्या हुआ," नानीमाँ बोलीं, फिर तुरन्त समझ हुक्का गुड़गुड़ाते बोलीं, "अरे घूंघट निकाल लिया तो क्या हुआ, पाखी है पाखी (तितली)। क्या जमाना आ गया है, अब तो लोग लुगाई लेकर दिन-भर पड़े रहते हैं," नानीमाँ बड़-बड़ायीं, "पहले हमारे जमाने में तो भैया सफेद रंग की साड़ियाँ ही मिलती थीं, जिसे हम लोग अपने मनचाहे रंग में रँग लेते थे—लाल, हरा, पीला। मर्द लोग सफेद धोती-कुर्ता ही पहनते थे। कभी चोरी-छुपे दोपहर को मर्द अपने कमरे में आ जाता तो, भैया, तुरन्त चोरी पकड़ में आ जाती थी। पसीने से साड़ी का रंग छूट जाता था और सफेद धोती पर लग जाता था। बस बाहर निकलते ही दोस्त पकड़ लेते—हाँ, भाभी के कमरे में गया था? फिर भैया, रात को भी कमरे में जाना क्या आसान बात थी, हम लोग नौ बहुएँ थीं। सबके अपने अलग-अलग कमरे थे। सास बहुत टेढ़ी थीं। हम लोगों को रात को पान लेकर सास के पैर छूने जाना पड़ता था, यह हमारी ससुराल का नियम था। पर वह पैर छूने दे तब न, हम लोग सब हाथ में पान लिये खड़ी रहतीं, जो पान देकर पैर छू लेता उसके भाग्य बड़े। यही नाटक करते-करते आधी रात कट जाती थी और अब देखो बहुओं को कोई

शर्म ही नहीं रह गयी है।"

नानीमाँ की बात सुनकर भाभी और भैया झेंप जाते और सभी लोग हँसने लगते।

उसने खिड़की से बाहर निहारा, सच मे सोचो तो कितना विचित्र लगता है, आँख के सामने से एक कितना बडा समय गुजर चुका है। यही वट-वृक्ष तब भी था और आज भी है, पर वह पुराने लोग आज सामने नहीं। उसे याद आता है इस वट-वृक्ष की पत्तियाँ सहलाता, उन्हें छूता, छेड़ता, चमकाता-सा सूरज उस दिन भी निकला था, हमेशा की तरह। तब वह अपने इसी कमरे में खड़ी-खड़ी नीचे का दृश्य निहारती थी।

उस दिन सूरज की तेज किरणें आसपास छिटकी-सी पड़ रही थीं। वट की नयी पत्तियाँ तेज धूप का आनन्द ले रही थीं। अभी भोर का अधिक समय नहीं हुआ था, पर लगता था जैसे दिन सर पर चढ़ आया हो।

सोना मौसी अपनी किनारीदार साड़ी को सँभालती जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ उतरती आयी, उनके आते ही रसोई से लेकर भण्डार-घर में भूकम्प-सा आ गया। सारे नौकर सोना मौसी का रोब मानते थे, क्योंकि भण्डार-घर की चाबी उनकी कमर में लटकती और दिन-भर के लिए हिसाब करके राशन वही देती थी। सबकी रसद का वही इन्तजाम करती, नौकरों की श्रेणी के अनुसार उन्हें चीजें मिलती। जो खास नौकर थे उन्हें चावल, दाल और साग के अतिरिक्त देशी घी और थोड़ी-सी मिठाई भी प्राप्त हो जाती और बाकी नौकरों को चावल-दाल और एक साग पर काम चलाना होता था। जिस पर कभी मौसी प्रसन्न हो गयीं, उसे उस दिन ज्यादा चीजें प्राप्त हो जातीं। इसलिए सारे नौकर उन्हें मखमली और चिकनी मुलायम आँखों से निहारते रहते। मजाल है भण्डार-घर के अन्दर कोई घुस जाये! अकेली ही सबके लिए रसद निकालतीं, बड़े-बड़े घड़े के आकार के कुम्हड़े अकेले काटतीं और छोटी-बड़ी श्रेणी के अनुसार उनका भाग लगातीं। कोई धीरे-से फुसलाकर कहता, "सोना दीदी, मेरे घर मेहमान आये हैं, थोड़ा ज्यादा रसद देना। तुम तो हमारा पेट पालती हो, भण्डार-घर की रानी हो, गरीब

दया करना।" और सोना मौसी तुरन्त मुलायम पड़कर हाथ ढीले कर
ा और रसद ज्यादा दे देतीं।

सोना मौसी के आते ही हलचल तेज हो जाती। वह जैसे आते ही सारे
र में होती गड़बड़ को एक नजर में ही ताड़ जातीं। चमरू और बदरी को
रामदे की सीढ़ी के पास बैठे बीड़ी फूंकते देखतीं तो नाराज होकर मुंह
ना लेतीं, वे लोग तुरन्त बीड़ी फेंककर अन्दर की ओर भागते।

"क्यूं रे, इतना दिन चढ़ आया और तुम लोग बीड़ी फूंक रहे हो?
गुसलखाना ठीक किया?"

"बस अभी ठीक किये देते हैं, थोड़ा फिनायल की शीशी खत्म हो गयी
थी, कम्पनी का माल हमारे यहाँ पहुँचता भी तो देर से है," कहता हुआ
चमरू अपनी जान छुड़ाकर गुसलखाने की ओर भागता।

तभी सोनू राउत, जो कावड़ लिये बाहर जा रहा होता, मसखरी से
थोड़ा रुकता और बोलता, "राम-राम सोनाबाई!"

"हरामी," सोना मौसी मुंह टेढ़ा करके हँस देतीं, "कितने कावड़ पानी
लाया अब तक?"

"क्या करें, रात-भर नींद ही नहीं आयी, इसलिए सुबह देर से उठा
हूं। तुम्हारी शक्ल की एक चुड़ैल आकर रात-भर तंग करती रही और भोर
होने को आयी तभी ज़रा आँख लपकी। उठा तो देखा दिन सर पर खड़ा
बोल रहा था। पहले ही सोच लिया कि दरोगनी बाई तो अब जान खा ही
लेंगी। तुम्हें दरोगनी बाई कहना ज्यादा ठीक लगता है!" सोनू ने मासूम
चेहरा बनाते हुए कहा।

"चल हट, मसखरी करता है! फूट आँख के सामने से, काम करने
दे!" सोना मौसी ने कमर में आंचल खोंसते हुए कहा।

सारे घर में सोनू राउत ही ऐसा था जिसके सामने सोना मौसी नरम
पड़ जाती थीं, शायद इसलिए भी कि वह उसकी जात का था और सोन्
बचपन से ही नानीमां का मुंहलगा नौकर था। नानीमां उसे स्नेह से खोटल
कहती थीं। सोनू कद में थोड़ा ठिगना था; इसलिए नानीमां उसे बचपन
खोटला कहतीं। सोनू के गुर्दे में ही इतना दम था जो वह सोना मौसी
मजाक-दिल्लगी कर लेता। सोना मौसी की भी उस पर खास नजर थ

इसलिए रसद भी वह उसे औरों से अच्छा देती। कभी-कभी चावल की ढेरी के भीतर गुड़ और मिठाई के दोने छुपाकर दे देती। सोनू हवेली का सबसे चौका जवान नौकर था। उसने अपने सारे शरीर को सरसों-तेल पिला-पिलाकर पुष्ट कर लिया था। उसके शरीर की छटा देखकर सोना मौसी निहाल हो जाती।

"लो, आ पहुँची कर्जदारनी, कर्जा वसूलने के लिए?" सोनू ने वट-वृक्ष के नीचे देखते हुए जोर से कहा, "क्यों जगनिया बाई, काहे को सुबह-सुबह मरने आ पहुँची है, भोर में तो तुझे देखकर सारा दिन खराब हो जाता है।"

सोना मौसी ने पलटकर वट-वृक्ष की तरफ देखा। वहाँ से धीरे-धीरे, बैठे-बैठे घिसटती हुई जगनिया बाई आ रही थी। वह रोज सुबह भण्डार-घर के सामने अपनी रसद लेने आ पहुँचती है।

"नहीं आऊँगी तो खाऊँगी क्या! अरे, तू बाँका जवान है, तो सबको तो भगवान ने वैसा नहीं बनाया न! बची-खुची माटी का जैसा-तैसा पुतला गढ़ दिया और दुनिया में नरक भोगने भेज दिया।"

"भगवान को भी मसखरी सूझी थी, तभी तो तुझे बनाया। अरे तेरे नाम से तो मैं श्मशान में लकड़ियाँ पहुँचा आया हूँ, और तू है कि यहाँ बैठे-बैठे खा रही है, वहाँ जाती नहीं," सोनू ने उसे चिढ़ाते हुए कहा।

"हरामी, अरे मेरे लिए लकड़ी तू पहुँचायेगा! यह नहीं कहता, अपने लिए पहुँचाने गया था। तू मर, तुझे ले जायेंगे श्मशानघाट, मैं क्यों जाऊँ!" जगनिया बाई बड़बड़ायी।

"सोनू, क्या बकबक लगा रखी है, चल पानी पहुँचा सब कमरों में, यहाँ खड़ा दिल्लगी कर रहा है," सोना मौसी ने डाँटा।

सोनू तुरन्त वहाँ से चम्पत हो गया। जगनिया बाई बड़ी मुश्किल से बरामदा चढ़कर ऊपर आयी। सोना मौसी ने झट-से ताला खोलकर सबसे पहले उसकी रसद अलग की और वह रसद लेकर अपने गन्दे फटे आँचल को जोड़ती सीढ़ियाँ उतर गयी। रसद के भार से उससे चलते नहीं बनता था, किसी तरह हाँफते-हाँफते वह अपने घर पहुँच जाती।

एक ब्राह्मण परिवार में जगनिया बाई ने जनम लिया था। माँ-बाप ने

पाँचवीं सन्तान थी। दीये के उजाले में सुईन ने जैसे ही एक अनहोनी बच्ची को देखा तो डर-सी गयी। विचित्र आकृतिवाली वह बच्ची थी, बित्ते भर की तो थी ही, पैर के नाम पर दो पतले लुंझ-पुंझ मांस के लोथड़े लटक रहे थे। न जाँघ थी, न घुटना, न पंजा। जचकी करते सुईन का बुढ़ापा आ गया था, पर इस तरह का बच्चा उसने नहीं देखा था। बाप ने जब बच्ची को देखा तो सर पीट लिया। उत्तेजना के कारण उसका दिमाग शून्य-सा हो गया। अर्ध-विक्षिप्त की-सी अवस्था में उसने उस बच्ची को उठा लिया और फावड़ा लेकर चल पड़ा जिन्दा गाड़ने। माँ सौर में पड़ी थी। उठकर बाहर नहीं जा सकती थी, बस वहीं पड़ी-पड़ी रोती रही और भगवान की दुहाई देती रही। धीरे-धीरे यह खबर सारे गांव में फैल गयी। किसी ने आकर नानाजी को यह खबर दी, उन्होंने दो आदमियों से उसे बुलवाया और खूब डाँट लगायी। उत्तर में ब्राह्मण रो पड़ा, "सरकार, मैं मानता हूँ कि मैं बड़ा भारी पाप करने जा रहा था। पर आप ही बताइए इसे मैं कैसे रख सकता हूँ? कब तक इसे खिलाता रहूँगा? चार घर की भिक्षा पर ही मेरे परिवार का पेट पलता है। मान लीजिए कल मैं मर गया तो इसे कौन दो कौर भोजन देगा? यही सब सोचकर इसे मिट्टी में गाड़ने जा रहा था, इसका जीना किस काम का!"

उसी दिन से भण्डार-घर से रसद ले जानेवालों में से उस नन्हीं-सी बच्ची का भी नाम दर्ज करवा दिया गया। याने उसका सारा खर्चा अब हवेली से दिया जायेगा। उस दिन के बाद से रोज उसे यहाँ से रसद मिलने लगी, साल में दो जोड़े कपड़े मिलने लगे, त्योहारों पर अलग कपड़े मिलते थे। जब तक उसके माँ-बाप जिन्दा थे तब तक वह रसद लेने आ जाते थे, पर जब से वे लोग मरे तब से उसे अकेले ही रसद लेने पहुँचना होता है।

"अरे जगनिया बाई, कितनी उम्र रसद खायेगी, मरकर छुट्टी पा तू। यहाँ का खाकर खूब मोटा रही है," सारे नौकर उससे मजाक करते, पर जैसे उस पर कोई असर नहीं होता था। वह बोलियाँ रोज सुनती थी, जब उसका जी जलता तो वह भी चिल्ला-चिल्लाकर गालियाँ देती, अंगुलियाँ फोड़ती और फिर अन्त में आँसू पोंछती अपने घर चली जाती। जहाँ भी

सड़क के किनारे दो लोग खड़े बात करते रहते, जगनिया बाई को शक हो जाता कि जरूर उसी पर हँस रहे हैं नासपीटे।

तब शायद वह पाँचवीं जमात में पढ़ती थी। उस दिन वह नानीमाँ के मखमली कालीन पर, जिस पर बहुत ही सुन्दर विलायती बेल-बूटे कढ़े थे, बैठी शान्त मन से अपनी गुड़िया को साड़ी पहना रही थी। तभी बदरी काका एक लड़की को लेकर आये थे।

"यह कौन है, इसे तो पहले कभी यहाँ नहीं देखा," उसने आश्चर्य से बदरी काका से पूछा।

"कौन है बिटिया," नानीमाँ ने उसकी आवाज पर पलंग पर से उठते हुए पूछा।

"मालकिन, कल रात यह और इसकी माँ मेरी छपरी में सहमी हुई-सी बैठी थी। रात बहुत पानी बरस रहा था न! लगता है इन्होंने कई दिनों से खाना भी नहीं खाया था। ये लोग अच्छे घर के जान पड़ते हैं, इसका नाम है अम्बो।"

"अच्छा!" नानीमाँ ने पैरों में चप्पल डालते हुए कहा।

"जी!" कहता बदरी प्रसन्न हो गया।

"क्या नाम है रे इसका?" नानीमाँ ने पूछा।

"अम्बो।" बदरी काका ने कहा, जैसे ही उन्होंने कहा वैसे ही उसने अपने हाथ की गुड़िया को नीचे रख नन्हीं-नन्हीं आँखें उठाकर उसे देखा। वह हैरान रह गयी, इतना तेज, इतनी शान्ति! ऐसी आँखें तो केवल माँ दुर्गा की ही हैं। बड़ी-बड़ी गहरी झील-सी आँखें, जहाँ दूर-दूर तक हरियाली-ही-हरियाली थी।

"ठीक है, सोना के पास ले जा, कहना मैंने भेजा है।" नानीमाँ ने कहा, फिर जैसे वह उसकी तरफ देखते हुए बोलीं, "शालू बेटा, तू भी साथ चली जा और सोना मौसी से कहना इस लड़की को रख लेगी।"

उसने हाथ की गुड़िया को अपनी कमर पर रख लिया, बिल्कुल उसी तरह जैसे औरतें बच्चे को पाती हैं। जैसे वह अचानक बड़ी-सी हो गयी

थी क्योंकि नानीमाँ ने उसे एक काम जो सौंप दिया था। वे लोग कमरे से बाहर निकल ही रहे थे कि नानीमाँ की आवाज आयी, "क्यों रे बदरी, तू इस लड़की की सिफारिश क्यों कर रहा था, कोई खास बात है !"

"नहीं, नहीं मालकिन !" बदरी बुरी तरह भयभीत हो उठा।

"अच्छा जा !" नानीमाँ ने हँसते हुए बात को टाल दिया।

भण्डार-घर के सामने एक बेंच पड़ी थी। उसी पर पीले रंग की बार्डर-वाली साड़ी पहने सोना मौसी बैठी थीं। बड़े-से पान के बीड़े से मुँह ठसाठस भरा था, नाक में तीन नगोंवाली बड़ी-सी कील थी, गले में सोने की माला और हाथ में काँच की चूड़ियों के अलावा सोने की चूड़ियाँ भी थीं, पैरों में झालरवाली खूब चौड़ी चाँदी की पट्टी थी।

"क्यों रे बदरी कामचोर, सुबह से कहाँ था ? तू समझता है मेरी आँख में तू धूल झोंक पायेगा ? सोना भण्डार घर में रहती है पर सारी हवेली की खबर रखती है, तू सुबह से कहाँ था और यह किसको पकड़ ले आया रे !" सोना मौसी ने चिल्लाते हुए कहा और जैसे पहली बार उस लड़की को घूरा और बोली, "हूँ, तो यह कौन है ?"

बदरी सिटपिटा-सा गया। सोना मौसी उस लड़की को ऐसे घूरने लगीं जैसे आँखों से ही चीर-फाड़कर खा जायेंगी।

"सोना मौसी, यह अम्बो है, इसे काम पर रख लो। नानीमाँ ने भेजा, है," उसने कहा।

"क्यों रे बदरी, तू फिर कोई नया जुगनू पकड़ ले आया," सोना मौसी ने डपटकर पूछा। पर उन्होंने अपना लहजा तुरन्त नरम किया, क्योंकि बदरी नानीमाँ की सिफारिश लेकर आया था, "हूँ तो यह बात है, पहले ही तू बड़ी मालकिन की सिफारिश ले आया न ! अब क्या रखा है, जब बड़ी मालकिन ने कह ही दिया है तो इसे रखना ही है। पर तू समझ ले, हवेली से कोई सामान यदि गया तो तुझे ही पकड़ूँगी।"

"सब काम करेगी यह, तुम जो बताओगी सब करेगी। ऐसे नाराज नहीं हुआ करते।" बदरी नरम पड़ते हुए धीरे-से बोला, क्योंकि वह जानता था कि नौकरी चाहे किसी ने भी दी हो, पर सोना मौसी की दया पर ही रहना होगा, किसी को निकालना सोना मौसी के बायें हाथ का खेल है।

"तू चुप कर, फालतू टाँय-टाँय लगाता है !" सोना मौसी ने बदरी को घुड़का और कड़क आँखों से अम्बो को देखते हुए बोलीं, "क्या काम जानती है ?"

"सब काम आता है," अम्बो ने घबराते हुए कहा, "वैसे मैं रसोई भी अच्छी बना लेती हूँ।"

"अच्छा, रसोई बना लेती है, पर अभी तो महाराज है, बाद में देखेंगे।" सोना मौसी ने उसे ऊपर से लेकर नीचे तक घूरते हुए कहा, "पान बनाना जानती हो ?"

"जी !"

"अरे, जी बोलने से काम नही चलेगा, यहाँ सबकी पसन्द अलग-अलग है, दिन-भर मे हजार से ऊपर पान बनाने पड़ेंगे, यह मामूली काम नही है !"

"हजार !" अम्बो की आँखें आश्चर्य से फैल गयी।

"हाँ, सबकी पसन्द अलग है।" सोना मौसी बेंच पर बैठते हुए बोली, "सबसे बड़ी मालकिन के कमरे में सुबह आठ बजे पान का डिब्बा जायेगा, जिसमें चाँदी के वरक तथा पूरा पान का मसाला डला होगा, पर हाँ, छालियाँ एकदम कागज की तरह पतली होंगी, और लौंग की जगह, चाँदी की बनी लौंगों की साँकल लगानी होगी, पान का पत्ता भी स्पेशल कलकत्ते-वाला होगा, याने सबसे ऊँचे दरजे का पान होगा। अगर उन्हें पान पसन्द नही आया तो आगे की बात तुम सोच लो। बड़ी मालकिन के कमरे मे चार बार पान जाते है। सुबह, दोपहर, शाम और रात। हर समय पान के डिब्बे बदले हुए होंगे। समय के अनुसार पान का मजा भी बदला हुआ होना चाहिए। छोटी मालकिन के कमरे मे भी यही पान जायेगा, पर उसमें इलायची डली हुई होनी चाहिए, और इतने ही समय पर पान जायेगा। सेक्रेट्री साहब के कमरे मे केवल तीन बार पान जायेगा। रात को यह घर चले जाते है। उनका पान कपूरी तथा मोटी सुपारीवाला किमामी पान होगा, पर हाँ, सुपारी चिकनी होगी और काला लखनउवा जर्दा होगा। बाहर हाल मे मेहमानों के लिए पाँच समय पान जायेगा। एक डिब्बा रसोइए के लिए रसोईघर में जायेगा। एक डिब्बा आफिस मे

एक डिब्बा मेरे पास आयेगा और बाहर से आने-जानेवालों के लिए अलग पान बनेंगे। घर के नौकर पान माँगें तो उनके लिए चालू पान बनाने होंगे, बड़े मालिक पान नहीं खाते। इस तरह हर आदमी के साथ उनका अपना मिजाज है, इसलिए तुम्हें दो-चार दिन समझना होगा, फिर तुम अपने आप सब समझ लोगी। पान खुद तुम्हें पहुँचाने होंगे। तुम्हारे पानघर में किसी को आने की इजाजत नहीं होगी, अगर किसी दिन तुम पकड़ ली गयीं तो उसका दण्ड भी तुम्हें भुगतना होगा। पान से अगर किसी को किसी भी तरह की बीमारी हुई या चक्कर आया तो उसका दण्ड तुम्हें भुगतना होगा, समझी!"

"जी···," अम्बो भौंचक्की-सी मौसी का मुंह ताक रही थी। इतने तरह के पान, इतने तरह के मिजाज होते हैं! पान बनाना इतना कठिन काम लगा उसे कि उसके माथे पर पसीना छलक आया।

गुड़िया को पकड़े वह भौंचक्की-सी सोना मौसी को निहार रही थी। उसे तो आज पता चला कि हवेली में इतने तरह के पान बनते हैं, उसे यह सब भूल-भुलैया-सा लग रहा था।

"हाँ, एक बात और, खास मेहमानों के आने पर तुम्हें मुझसे आकर पूछ लेना चाहिए कि किस तरह के पान बनाये जायेंगे।"

"अगर मैं रोज आपसे पूछ लूं तो?"

"लो सुनो," सोना मौसी ने सर पर हाथ मारा, "अरी आफत की मारी, वैसे ही मेरे सर पर क्या कम काम है, जो तू रहा-सहा दिमाग भी चट कर जायेगी। मुझसे रोज पूछने की कोई जरूरत नहीं, मुझे जो समझाना था सो समझा दिया, तू अपना काम कर। बड़े घरों में काम करना बड़े दिमाग का काम है। वह तो तेरी भोली सूरत पर तरस खाकर इतना सब बता दिया। अच्छा जा, और भी काम हैं मुझे।" सोना मौसी उठीं और धड़-धड़ाते हुए भण्डार-घर में घुस गयीं।

बाबूजी का दीवानखाना अब पूरी तरह खाली पड़ा रहता है। वहाँ आज भी ऐशो-आराम की सारी चीजें सजी थीं, पर उन पर धूल-ही-धूल थी। पहले

यही कमरा राजनीतिक, साहित्यिक अखाड़े से लेकर वकालत तक का अड्डा था। हर नयी स्कीम इसी हाल में पककर तैयार होती थी। नानाजी जब जर्मनी की लड़ाई से लौटे थे तब इसी हाल में उनका स्वागत किया गया था। आज वही कमरा कैसा सूना-सूना पड़ा था। वीरान-सा, वकालत की सारी पुस्तकें अब धूल खा रही थीं, उनके पीछे चिड़ियों ने अपनी गृहस्थियाँ सजा ली थीं। दीवार पर बाबूजी की बचपन से लेकर जवानी तक की फोटो लगी थी। कहीं नेहरूजी के साथ, कहीं राजेन्द्र बाबू के साथ, कहीं बाबूजी उद्‌घाटन कर रहे हैं, कहीं भाषण दे रहे हैं, कहीं चरखा कात रहे हैं। पहले बाबूजी बोलते भी कितना थे, पर अब तो लगता है जैसे बोलते ही नहीं। भैया का जब जन्म हुआ था तब सुना है सबसे ऊपरवाली मंजिल बनी थी और घर में ढेर-सारा आधुनिक सामान आया था।

"हर पीढ़ी को अपनी आनेवाली पीढ़ी के सामने कुछ-न-कुछ यादगार बनानी चाहिए, इससे आगे की पीढ़ी में हौसला रहता है!" बाबूजी अक्सर कहते, "देखो, इसीलिए पहले हर राजा, बादशाह अपने समय में कुछ-न-कुछ महल बनवाता था, जिसे देख उसकी आगे की पीढ़ी भी बनाती थी।"

"देखो, जमाना बदल गया, पर किधर से?" बाबूजी पीछे हाथ बाँधकर उसके आगे खड़े हो जाते हैं। कभी वह तेजी से आगे बढ़ जाते, कभी एकदम उसके पास, सामने आकर खड़े हो जाते। फिर वह उसे टकटकी बाँधकर देखते हुए कहते हैं, "देख शालू बेटा, पहले कितना अच्छा वक्त था मेरा, नौकर-चाकर, बाग-बगीचे, पर अब जैसे कुछ भी नहीं है। न जमींदारी का वह रोब-दाब रहा, न वकालत की वह शान रही। अब तो मेरी वकालत चलती ही नहीं है," बाबूजी पलभर रुकते हैं और गहरी साँस खींचते हुए बोलते हैं, "पर बेटा, देना-लेना जरूरी है न, खर्च एक भी कम नहीं हुए। तेरी नानीमाँ के मरने पर कितना खर्च करना पड़ा, गाँववाले तो पहले की ही तरह आज भी सोचते हैं। देखो, समय क्या-से-क्या हो गया, छोटे-छोटे लोग आगे बढ़ गये, अब यहाँ कितने वकील हो गये हैं जो कारों में घूम रहे हैं, पर मेरे तो जैसे पैर ही टूट गये हैं!"

"नहीं बाबूजी, ऐसी बात नहीं है," वह बोलती है, "आपने हमें ऊँची-से-ऊँची तालीम दी। भैया को अच्छी जगह रखकर पढ़ाया, आज वह →

जमाना बदल गया है।

बड़े अफसर हैं। इतने बड़े परिवार का खर्च था, फिर भी बढ़िया घरों में हम सबको आपने ब्याह दिया। उन लोगों ने क्या किया? सब व्यापारी लोग थे, लड़का बी. एस-सी. फेल हुआ तो बी. ए. कराकर लॉ में दाखिला दिला दिया और बैठा दिया वकालत के लिए। आप खुद देखें, तो चौबे काका के तीनों बेटे बी. एस-सी. फेल होकर वकील नहीं हुए? कौन भैया की तरह उनके लड़के किसी ऊँचे पद पर हैं।"

"हाँ, बात तो ठीक है बेटा," बाबूजी सोफे पर बैठ जाते हैं, "पर लोगों को यह दिखता नहीं न, वह तो यही समझते हैं उनके बच्चे लायक निकले और हमारे कपूत···क्योंकि सब परदेश चले गये, कौन हमारे धन्धे पर बैठा? बुढ़ापे में वकालत भी नहीं चलती···वकालत का पेशा तो पीढ़ी की बलि माँगता है। एक-न-एक बेटा तो इसे देना ही होता है, पर मैं क्या करता, मेरा तो एक ही बेटा था। मैं चाहकर भी उसे बाँध नहीं सकता था।

"देखो, सोना, बदरी और अम्बो बस यही लोग बच गये हैं जो आज भी मेरे साथ हैं, शायद इसलिए कि इन लोगों को बचपन से यहाँ पाला-पोसा गया, कभी इन्हें अपने से अलग नहीं समझा। वरना इस बुढ़ापे में मुझे और तुम्हारी माँ को ही सबकुछ देखना पड़ता। सही समझो तो अब लगता है ये लोग ही मेरे असली बच्चे हैं!" बाबूजी फिर बोलते हैं, और थके-से खिड़की के बाहर देखने लगते हैं।

"बाबूजी, आप बात तो सही कह रहे हैं, पर किया क्या जा सकता है!"

"देखो शालू, तुम लोग मौत के समय भी नहीं पहुँच पाये, आये भी तो तब, जबकि सारा काम हो चुका है।" बाबूजी ठण्डी साँस खींचते हुए कहते हैं, "अगर ऐसा ही मेरी मौत पर हुआ तो बिरादरी में तो बेटा, मेरी नाक कट जायेगी। वह आदमी कितना बदकिस्मत होता है, जिसे अपने ही बच्चों के कन्धे न मिलें।"

"बाबूजी···" वह परेशान और दुखी होकर उनको निहारने लगती है। बाबूजी ने कितनी कड़वी और सच्ची बात कह दी थी आज। वह जमाना जिसे आज याद करो तो कितना-कितना भला लगता है, कितनी

ताम-झाम थी, पर आज जैसे कुछ भी नहीं। तमाशा दिखानेवाले जैसे अपना सारा सामान बाँधकर जा चुके हैं।

"लो, आदमी का जन्म भी कैसा! बच्चे छोटे थे तो कितनी व्यस्त थी जिन्दगी! काम खत्म ही नहीं होता था। पर अब तो दिन ही नहीं कटता। बच्चे बड़े हुए, एक-एक कर सब उड़ गये डाल पर से!" माँ रुआँसी-सी तखत पर बैठती हुई बोलती हैं।

वहाँ बैठे सारे लोगों में माँ की बात को कोई नहीं समझता, कोई उत्तर नहीं देता, सब जैसे अपने-आपमें चुप-से हैं, पर वह खुद माँ के दर्द को पहचानने लगी है, क्योंकि अब उसका बेटा भी बड़ा हो गया है।

"बहू, दो-दो बेटों की माँ हो, हरछठ का उपवास रख लिया करो न!" माँ भाभी को एक बार देखकर फिर से समझाने लगती हैं।

"यह क्या होता है?" भाभी भोलेपन से कहती हैं, "माँ, तुमने शादी पर मुझे करवाचौथ का व्रत रखने को कहा था, पर यह मना करते हैं, कहते हैं, मत रखो, तबीयत खराब हो जायेगी, इसलिए नहीं रखती हूँ।"

"राम-राम-राम," माँ हैरान-परेशान होकर भाभी को देखती हैं, "बहू, तुमने करवाचौथ का व्रत भी छोड़ दिया?" माँ फिर बुदबुदाने लगती हैं, "पति के लिए नहीं किया तो फिर बेटों के लिए क्या करोगी।"

"हरछठ का व्रत क्या होता है, माँ?" भाभी पूछती हैं, पर माँ कोई उत्तर नहीं देतीं, और सूनी-सूनी आँखों से छत को देखने लगती हैं।

"भैया, कम-से-कम राखी पर तो एक चिट्ठी डाल दिया करो, तुम्हारे पत्र पढ़ने को जी तरस गया है।" सीमा अपने पुराने अन्दाज में वैसे ही उचकती हुई बोलती है।

"सब बेकार दस्तूर है," भैया हाथ में छड़ी घुमाते हुए बोलते हैं, "यह क्यों नहीं कहती कि साड़ी भेजो!" भैया सीमा की तरफ झुक आये, "अरे, तुझे पता है हमारी जितनी तनख्वाह है उसमें डबल का खर्चा है! बस, तुम्हारे बच्चों की शादी में सब कर्जा पटा दूँगा। बढ़िया भात लेकर आऊँगा।"

"ना भैया ना, तुम्हें जो देना है, अभी दे दो। हमारे बच्चों की आस में हमें क्यों रखते हो ? कौन जाने बड़े होकर ये कोर्ट में जाकर ही शादी कर लें, जमाना बदल गया है न।" सीमा हँसते हुए कहती है। उसकी इस बात ने शाम के वातावरण में घिर आये भारीपन को कम कर दिया था।

सब जोर से हँस देते हैं।

"अरे, तू दो-दो हजार कमाता है, बहनों के नाम साल में चार-पाँच सौ नहीं निकलते ? मैं तो हर साल तेरी बुआ लोगों को कपड़े भेजती हूँ और तू अभी से बहनों को भुला बैठा !" माँ बोलती हैं, फिर जैसे समझाने के अन्दाज में कहती हैं, "बेटा, तीज-त्योहारों से ही तो आदमी एक-दूसरे को याद करता है, तू उतना भी नहीं करता !"

"भैया, तुमने मेरी शादी में जो बढ़िया-बढ़िया सामान खरीदा था न," सीमा फिर चहकते हुए बोलती है, "इलेक्ट्रिक केटली और टोस्टर दिया था न, पता है क्या करती हूँ मैं ! केटली में दाल पकाती हूँ और टोस्टर में पतला-पतला शकरकन्द काटकर सेंकती हूँ।"

"क्या !" भैया हैरान-से रह जाते हैं, "देख, किसी और के सामने यह बात न कहना, वरना लोग तुझे पागल कहेंगे।"

"क्या कहूँ, मुझे गाँव में ब्याह दिया, वहाँ इलेक्ट्रिक केटली और टोस्टर का क्या काम !" सीमा उसी मूड में बोलती है।

सीमा की बात पर सब हँसने लगते हैं। भाभी तो हँस-हँसकर दोहरी हो जाती हैं, फिर जैसे तरफदारी करती बोलती हैं, "तुम्हारे भैया दिखते ऐसे हैं, पर सबकी याद करते हैं। राखी अगर समय पर नहीं पहुँचे तो उदास हो जाते हैं और खाना नहीं खाते। पिछले साल ऐसा ही तो हुआ, राखी नहीं मिली, यह उदास थे, खाना नहीं खाया, बोले भूख नहीं है। डेढ़ बजे पोस्टमैन अचानक लिफाफे लेकर आ गया, बस फिर क्या था, तुरन्त राखी बाँधी, तिलक लगाया और खाने बैठ गये।"

"भैया, दीदी के घर बेटी का ब्याह होगा, आओगे न !" वह पूछती है।

"वह भात माँगने आयेगी तो आऊँगा, नहीं तो नहीं।" भैया नाश्ते की प्लेट टेबल पर से उठाते हुए बोलते हैं।

"तू तो दिल्ली रहता है भैया, इतनी दूर भात माँगने जायेगी तब तू उसकी बेटी के ब्याह मे आयेगा !" माँ हैरान होकर बोलती है, "ऐसा मत करना बेटा, बिना बुलाये आ जाना, उतना पैसा कहाँ से लायेगी बेचारी कुसुम।"

"लो माँ, तुम भी बेटियों का साथ देने लगी।" भैया ढीठ बने बोलते हैं, "बिना भात माँगे मैं शादी मे कैसे आऊँगा !"

"अच्छा, लो भैया, मैं अभी से भात माँग लेती हूँ, पर दीदी की लड़की की शादी मे जरूर आना !" सीमा दौडकर जाती है और पूजा-घर से पूजा की थाली से बताशा उठाकर अपने हाथो मे रख, भैया के आगे फैला देती है।

"पर यह तो तू भात माँग रही है, कुसुम दीदी माँगे तब न !" भैया हँसते हुए बोले।

"अरे बेटा, कोई भी लड़की भात माँग लेती है, बात तो एक ही है। तू भात देने नहीं आयेगा तो बिरादरी मे बेचारी कुसुम की हँसी हो जायेगी। मामा के घर का पहने-ओढ़े बिना लड़की का भाँवर कैसे होगा ?" माँ उदास होते हुए बोली।

"अच्छा बाबा, आ जाऊँगा, तुम लोग तो जैसे मेरे पीछे ही लग गयी !" *भैया बात को समाप्त करते हुए बाहर चले गये।*

कुसुम दीदी की शादी लगी थी तब माँ पर्दे-लगी बड़ी-सी बैलगाडी मे बैठकर उसे साथ ले बताशे की थाल लिये दूर के मामा के यहाँ भात माँगने गयी थी। शादी के समय मामा आये थे, धूमधाम से भात लेकर। बाहर ड्योढ़ी पर ही मामा को रोक लिया गया था। माँ औरतो के साथ मगलगान गाती हुई भाई को लिवाने बाहर आयी थी। दोनों भाई-बहन को एक-एक पीढे पर खड़ा कर दिया गया था। दोनो ने एक-दूसरे को तिलक लगाया, बताशा खिलाया, फिर मामा ने माँ के पैर छुए, फिर वह अन्दर आये।

नानीमाँ बताती थीं, पुराने समय में एक लड़की का भाई बहुत गरीब था, उसे कई-कई दिन खाना नसीब नही होता था। बहन संकोच से भाई को बुलाती नही, पर मन-ही-मन मनाती रहती है कि किसी तरह भाई आ जाये। भाई बिना बुलाये टूटी-सी अपनी सन्दूक लिये बहन के घर पहुँच जाता है। दोनों एक-दूसरे को देखकर रोते हैं। भाई सन्दूक खोलता है पुराना

वस्त्र देने। पर यह क्या, सन्दूक से थान-के-थान कपड़े निकलने लगते हैं, यहाँ तक कि बहन के आगे थान के अम्बार लग जाते हैं। इस तरह भाई और बहन दोनों की इज्जत भगवान ने रख ली थी।

माँ बताती हैं पहले उनके गाँव में एक लड़की थी, जिसका अपना कोई भाई नहीं था। जब उसकी लड़की की शादी होनेवाली थी तब वह रो-रोकर बेहाल हो गयी, पर ऐन शादी शुरू होने के दिन सारा-का-सारा गाँव उमड़ पड़ा था भात देने। कपड़े, बर्तन, गहने, रुपयों का ढेर लग गया। इतने भाई खड़े हो गये कि वह तिलक करते-करते थक गयी थी।

"बहू, एक-दो दिन और रह जाओ, कौन तुम लोग दिल्ली से रोज आ पाते हो!" माँ बोलती हैं, "माँ की मौत हुई तो सब कोई जमा हो गये वरना कौन आता है। अब तो डर लगता है, मेरे मरने पर भी तुम लोग आ पाओगे या नहीं!"

"क्या करें, माँजी," भाभी बोलती हैं, "बच्चे सब कान्वेण्ट में पढ़ते हैं और उन्हें छुट्टियाँ नहीं मिल पातीं।"

"देखो तो मेरे भाग्य", माँ पूजा की थाली में दीया रखते बोलीं, "मैंने अपने बेटे के बच्चों को भी नहीं देखा। सारे लोग दिल्ली जाकर देख आये, पर मैं दिल्ली जा नहीं पायी। बच्चों को बहू एक-दो दिन के लिए ही ले आती, क्या गाँव में हम बच्चों को नहीं रख सकते थे? हमारे बच्चे क्या गाँव में नहीं रहते थे?"

"माँ, तुम उनके बच्चों को रोज फलों का रस और अण्डा नहीं खिला सकतीं, वे वही खाते हैं।" सीमा पूजा के लिए फूलों का हार पिरोती बोलती है, "जाने दो, क्या फर्क पड़ता है, भैया-भाभी आकर खड़े हो गये, क्या यही बहुत नहीं है?"

"हाँ, उम्मीद से कहीं ज्यादा!" माँ आँचल से अपनी गीली आँखें पोंछ लेती हैं। वातावरण फिर भारी हो उठता है। भाभी गुस्से से बाहर चली जाती हैं।

"माँ, बहू को बढ़िया साड़ी दिया करो, गहने दिया करो, तब वह

त्योहारों पर आया करेगी!" सीमा फिर बोलती है।

"लो बिटिया की बात, हम बहू को अब साड़ी दें, गहने दें।" माँ हैरान हो मुड़कर कहती हैं, "अरे, बुढ़ापे मे तो उनको हमें देना चाहिए न कि हम उन्हें दें!"

"माँ, जमाना बदल गया है," सीमा हाथ नचाते हुए बोलती है, "अब सब उल्टा हो गया है। बहू अब ससुराल नहीं आती, तभी आती है जब उसे साड़ी मिले।"

"हे भगवान, क्या जमाना आ गया है," माँ गहरी साँस खींचते हुए बोली, "पहले यह घर कितना भरा-भरा था, क्या ऐशो-आराम थे, नौकरों-चाकरों की कैसी चहल-पहल रहती थी। हर त्योहार पर कितना भी कष्ट हो, चाहे नदी मे बाढ आ जाये, पर तुम लोग उसी कच्चे रास्ते से हॉस्टल से घर आते थे, लेकिन अब कोई नही आता। सड़क भी पक्की हो गयी, नदी पर बडा भारी पुल भी बन गया, गाँव में बस और ट्रेन भी आ गयी, फिर भी कोई नही आता!" माँ हताश होकर कहती हैं और अपनी लाल हो आयी आँखो से दीये को घूरने लगती हैं।

आज सुबह से ही वातावरण काफी भारी था। पहले भी वह लोग जाया करते थे पर इतना बुरा कभी नही लगता था। आज जाते हुए लग रहा था पता नही अब कब *लौटना होगा*। वह और सीमा सुबह से छुप-छुपकर कई बार रो चुकी थी। माँ तो जैसे सुबह से ही रो रही है। सोना मौसी, अम्बो, बदरी काका जैसे अचानक और बूढ़े लगने लगे हैं। थके हुए-से सूनी-सूनी आँख उठाकर वे लोग बार-बार आसमान को देखते हैं और जैसे अपने आप ही बुदबुदाते हैं—पता नही बच्चे अब कब लौटेंगे।

घर के सामने तीन ताँगे खड़े हैं, जिन पर सबका सामान लादा जा चुका है। विदाई का वह क्षण, जिसे याद करते ही कलेजा काँप जाता था, आखिर पास आ ही गया।

बदरी काका ताँगे को पकड़े हुए अपने गमछे से बार-बार आँखें पोंछ लेते हैं, बाबूजी दालान में दुखी-परेशान-से खड़े हैं।

माँ आगे बढ़ती हैं और बहू के सर पर हाथ फेरते बोलती हैं, "बहू, बच्चों को एक बार यहाँ जरूर लाना, सब देख आये हैं, मैंने ही उन्हें नहीं देखा है।"

"हाँ माँजी, इस बार आऊँगी तो बच्चों को अवश्य लाऊँगी !" भाभी झुककर माँ और बाबूजी के पैर छू लेती हैं।

विदा लेकर वे लोग ताँगे में भारी मन-से बैठ चुके होते हैं, कि अचानक वह देखती है बाबूजी हाथ से रुकने का इशारा कर अन्दर चले जाते हैं और जब लौटते हैं तो उनके हाथ में एक बड़ी-सी तस्वीर दिखती है, जो बरसों से दीवानखाने के बड़े-से हॉल की दीवार पर लगी थी। बाबूजी की वही ऐतिहासिक फोटो थी, जिसमें वह राजेन्द्र बाबू को माला पहना रहे थे।

"बेटा, यह फोटो लेते जाओ," बाबूजी ताँगे तक आकर भैया के हाथ में तस्वीर थमाते हुए बोले, "यहाँ अब इसको देखनेवाला कौन आता है, तुम्हारे पास रहेगी तो लोग जानेंगे, बच्चों को भी पता चलेगा कि उनके दादा का क्या जमाना था !"

ताँगा आगे बढ़ गया। घोड़ों की टाप के बीच बाबूजी के बाकी शब्द पीछे छूट जाते हैं, उसे लगने लगता है घोड़ों की तेज-तेज टाप उसके माथे पर पड़ रही है।